उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — १२ | १९९३ — अगस्त | अंक — ८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

सम्पादक :

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

फोन। ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

जीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से —	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

सभी ईश्वर के अधीन है। उन्हीं की लीला है। उन्होंने अनेक वस्तुओं की सृष्टि की है,—छोटी-बड़ी, भली-बुरी, मजबूत-कमजोर। अच्छे आदमी, बुरे आदमी। यह सब उन्हीं की माया है—उन्हीं का खेल है। देखो न, बगीचे के सब पेड़ बराबर नहीं होते।

(२)

जिन्होंने ईश्वर को पा लिया है. उनका भाव जानते हो क्या है ? मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो; मैं गृह हूँ, तुम गृही; मैं रथ हूँ, तुम रथी; जैसा चलाते हो, वैसा ही चलता हूँ; जैसा कहाते हो, वैसा ही कहता हूँ।

(३)

ईश्वर की बात कोई कहता है, तो लोगों को विश्वास नहीं होता। यदि कोई महापुरुष कहे, मैंने ईश्वर को देखा है, तो कोई उस महापुरुष की बात ग्रहण नहीं करता। लोग सोचते हैं, इसने अगर ईश्वर को देखा है तो हमें भी दिखाये तो जानें। परन्तु नाड़ी देखना कोई एक दिन में थोड़े ही सीख लेता है ! वैद्य के पीछे महीनों घूमना पड़ता है। तभी वह कह सकता है, कौन कफ की नाड़ी है, कौन पित्त की और कौन वात की है। नाड़ी देखना जिनका पेशा है, उनका संग करना चाहिए।

(४)

मिथ्या कुछ भी अच्छा नहीं। मिथ्या वेष भी अच्छा नहीं। वेष के अनुकूल यदि मन न हुआ, तो क्रमशः उससे महा अनर्थ हो जाता है। झूठ बोलने या बुरा कर्म करने से धीरे धीरे उसका भय चला जाता है। इससे सादे कपड़े पहनना अच्छा है। मन में आसक्ति भरी है, कभी-कभी पतन हो जाता है, और बाहर से गेरुआ ! यह बड़ा ही भयानक है।

विनय

— सूरदास

(१)

अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल ।
काम-क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल ।
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल ।
भरम भर्‌यो मन भयौ पखावज, चलत कुसंगति चाल ॥
तृसना नाद करति घट-भीतर, नाना विधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल, सुधि नहि काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करहु नँदलाल ॥

(२)

प्रभु मेरे अवगुन चित न धरौ ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, अपने पनहि करौ ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ ।
यह दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलोहि नीर भरौ ।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भये, सुरसरि नाम परौ ॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत, सूर श्याम झगरौ ।
अबकि बेरि मोहि पार उतारौ, नहि पन जात टरौ ॥

कृष्ण

—स्वामी विवेकानन्द

(अप्रैल १, १९०० ई० को कैलिफोर्निया में दिये गये भाषण के अंश)

कृष्ण का आविर्भाव लगभग ठीक उन्हीं परिस्थितियों से परिवेष्टित है, जिनसे भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का जन्म हुआ। केवल यही नहीं, उस समय की सी घटनाएँ हम अपने समय में भी घटित होते देख रहे हैं।

कृष्ण का यही महान् कार्य था : हमारी आँखों को स्वच्छ कराना और मानवता की ऊर्ध्वगामी प्रगति को विशालतर दृष्टि से दिखाना। उनका ही पहला हृदय था, जिसमें सब में विद्यमान सत्य को देख सकने की विशालता थी, और उनकी ही प्रथम वाणी थी, जिससे प्रत्येक और समस्त के निमित्त सुन्दर शब्द उच्चरित हुए।

यह कृष्ण बुद्ध के लगभग एक हजार वर्ष पूर्व हुए। ···बहुत से लोग इस बात में विश्वास नहीं करते कि उनका कभी अस्तित्व भी था। कुछ लोगों का विश्वास है कि (कृष्ण की उपासना) प्राचीन सूर्योपासना (से विकसित हुई) ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण कई हुए हैं; एक का उल्लेख उपनिषदों में है, दूसरे कोई राजा थे, अन्य एक सेनानी। इन सबको एक कृष्ण में पुंजीभूत कर दिया गया है। किन्तु इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। तथ्य यह है कि कोई ऐसा व्यक्ति आता है, जो आध्यात्मिकता में अद्वितीय है। तब उसके चारों ओर सभी तरह की दंत कथाओं की सृष्टि हो जाती है। किंतु ऐसे जिस एक व्यक्ति को लेकर जिन बाइबिलों और कथाओं की रचना होती है, उसके चरित्र के अनुसार उनको पुनः ढालना होता है। बाइबिल के नव व्यवस्थापन में पायी जानेवाली समस्त कथाओं को ईसा के स्वीकृत जीवन और चरित्र के अनुरूप ढालना पड़ा है। बुद्ध से संबंधित समस्त भारतीय कथाओं में भी उनके समग्र जीवन का मूल स्वर—दूसरों के लिए आत्म त्याग—सुरक्षित रखा गया है।···

कृष्ण में हमें उनके संदेश में···दो विचार सर्वोपरि मिलते हैं ; पहला है—विभिन्न विचारों का सामंजस्य ; और दूसरा है अनासक्ति। मनुष्य पूर्णत्व को, सर्वोच्च लक्ष्य को, राज सिंहासन पर बैठे रहकर, सेनाओं का संचालन करते रहकर, राष्ट्रों के निमित्त विराट् योजनाओं को कार्यान्वित करते रहकर, प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः कृष्ण का महान् उपदेश युद्धक्षेत्र में ही प्रदान किया गया है।

कृष्ण प्राचीन पुरोहितों की सारी छलना, विडंबना और उनके विधि-विधानों की व्यर्थता के मर्म को अच्छी तरह समझ गये थे; किंतु फिर भी उन्हें इन बातों में कुछ अच्छाई भी मिली।

यदि तुम एक सबल मनुष्य हो, तो बहुत अच्छा है। किंतु तब उन लोगों की भर्त्सना न करो, जो तुम्हारे लिए अभीष्ट मात्रा में बलवान नहीं हैं।··· हर कोई कहता है, 'बुरा हो तुम्हारा!' लेकिन

यह कहनेवाला कौन है, 'बुरा हो मेरा, जो मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता ?' लोग अपनी क्षमता, सामर्थ्य और ज्ञान के अनुरूप जो कुछ उनसे संभव है, ठीक कर रहे हैं। बुरा हो मेरा, जो मैं उन्हें उठाकर वहाँ नहीं ला सकता, जहाँ मैं हूँ !

अतः कृष्ण का कहना है कि अनुष्ठान, देवताओं की पूजा, और दंतकथाएँ, सब ठीक हैं। ···क्यों ? क्योंकि वे सब उसी लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। अनुष्ठान, ग्रन्थ और आडंबर—ये सब शृंखला की कड़ियाँ हैं। बस, पकड़ लो ! वही एक चीज है। यदि तुम निश्छल हो और तुमने किसी एक कड़ी को सचमुच पकड़ लिया है, तो उसे छूटने न दो, फिर शेष का आ जाना ध्रुव है। (किंतु लोग) पकड़ते ही नहीं। वे इसी का निर्णय करने और इसी पर झगड़ने में समय बिताते रहते हैं कि पकड़ना क्या चाहिए और आखिर किसी भी चीज को पकड़ नहीं पाते। ··· सत्य का पीछा हम सदैव करते रहते हैं, लेकिन उसे पाना कभी नहीं चाहते। ···हम केवल इधर-उधर भटकने और पूछने का सुख भर चाहते हैं। हमारे पास शक्ति प्रचुर है, किंतु हम उसका व्यय इस प्रकार करते हैं। इसी कारण कृष्ण ने कहा है ! एक ही केंद्र से निकल कर बाहर फैली इन शृंखलाओं में से किसी एक को पकड़ लो। कोई एक पग दूसरे की अपेक्षा बड़ा नहीं है। ···धर्म के किसी भी पक्ष की, जहाँ तक वह निश्छल है, भर्त्सना न करो। इन शृंखलाओं में किसी एक को पकड़े रहो और वह तुम्हें केंद्र में खींच ले जायगी। शेष सब स्वयं तुम्हारा हृदय ही तुम्हें सिखा देगा। भीतर बैठा हुआ गुरु सभी मत-मतांतरों और दर्शनों की शिक्षा दे देगा···

कृष्ण भी ईसा की भाँति अपने को ईश्वर मान कर बात करते हैं। वे देवता को अपने भीतर देखते हैं। और वे कहते हैं, 'मेरे मार्ग से भटक कर कोई व्यक्ति नहीं जा सकता। सबको मेरे पास आना ही है। मुझको कोई जिस रूप में भजता है, उसको मैं उसी रूप के प्रति श्रद्धा प्रदान करता हूँ, और उसी के द्वारा मैं उसको मिलता हूँ ···' उनका हृदय सम्पूर्णतः जन साधारण के लिए है।

स्वतंत्र, कृष्ण झुकने से अस्वीकार करते हैं। उनकी निर्भीकता हमें डरा देती है। हम हर वस्तु पर निर्भर हैं कुछ अच्छे शब्दों पर, परिस्थितियों पर। किंतु जब आत्मा किसी भी वस्तु, जीवन तक पर, निर्भर न रहना चाहे, तो वह दर्शन की पराकाष्ठा है, मनुष्यत्व की पराकाष्ठा है। उपासना भी उसी लक्ष्य तक ले जाती है। कृष्ण उपासना पर बड़ा बल देते हैं। ईश्वर की उपासना करो !

इस संसार में हम विविध प्रकार की उपासना देखते हैं। रोगी मनुष्य ईश्वर के प्रति बड़ा पूजा भाव रखता है। ···अपनी संपदा खो देनेवाला व्यक्ति धन पाने के निमित्त बड़ी पूजा करता है। लेकिन सर्वोच्च उपासना उस व्यक्ति की है, जो ईश्वर को ईश्वर के निमित्त ही प्रेम करता है। (यह प्रश्न किया जा सकता है कि) यदि ईश्वर है, तो संसार में इतना दुःख क्यों है ? उपासक उत्तर देता है : "··· दुःख इस जगत् में अवश्य है (किंतु) इस कारण मैं ईश्वर को प्रेम करना नहीं छोड़ सकता। मैं उसकी उपासना इसलिए नहीं करता कि वह मेरे (दुःख) को हर ले। मैं उसको इसलिए प्रेम करता हूँ कि वह साक्षात् प्रेम है।" अन्य (प्रकार की उपासना) निम्नस्तरी है। किंतु कृष्ण किसी की भी निंदा नहीं करते। निश्चल खड़े रहने की अपेक्षा कुछ करना अधिक अच्छा है। जो मनुष्य, ईश्वर की उपासना आरम्भ कर देता है, उसका विकास क्रमशः होता रहेगा वह ईश्वर को केवल प्रेम के ही निमित्त प्रेम करने लगेगा।···

इस जीवन को जीते हुए पवित्रता कैसे प्राप्त की जाय ? क्या हमें वन की गुफाओं में जाना चाहिए ? उससे क्या लाभ होगा ? यदि मन नियंत्रण के बाहर हो तो गुफा में रहने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि वही मन सारा उत्पात वहाँ भी उपस्थित करेगा। गुफा में हमें बीस शैतान मिलेंगे, क्योंकि सारे शैतान मन में विद्यमान है। यदि मन पर नियंत्रण हो, तो हम जहाँ भी हों, वहीं गुफा प्राप्त कर सकते हैं।

यह हमारा मनोभाव ही है, जो हमारे जगत् वह हमारे लिए जो भी है—की रचना करता है। हमारे विचार वस्तुओं को सुन्दर बनाते हैं; हमारे विचार ही वस्तुओं को कुरूप बनाते हैं। सारा जगत् हमारे अपने मनों में है। वस्तुओं को सम्यक् दृष्टि से देखना सीखो। पहले इस संसार में विश्वास करो--कि हर वस्तु के पीछे अर्थ है। जगत् की प्रत्येक वस्तु शुभ, पवित्र और सुन्दर है। यदि कुछ तुम्हें अशुभ लगे, तो सोचो कि तुम उसे सम्यक् दृष्टि से समझ नहीं पा रहे हो। बोझ अपने ऊपर डाल दो। ···जब-जब हम यह कहने को लालायित हों कि संसार की अधोगति हो रही है, तो हमें स्वयं अपना विश्लेषण करना चाहिए, और तब हमें अनुभव होगा कि वस्तुओं को उनके वास्तविक स्वरूप में देखने की शक्ति ही हमने खो दी है।

दिन और रात कर्म करते रहो। 'देख, मैं तो विश्व का प्रभु हूँ। मेरा कोई भी कर्तव्य नहीं है। हर कर्तव्य बंधन है। किंतु मैं कर्म के निमित्त कर्म करता रहता हूँ। यदि मैं एक क्षण भी कर्म बन्द कर दूँ, (तो सब अस्त-व्यस्त हो जाय।") कर्तव्य के विचार से-रहित होकर तू भी इसी तरह कर्म कर।···

यह जगत् एक खेल है। तुम उस (ईश्वर) के साथ के खिलाड़ी हो। चलते रहो, और बिना किसी दुःख, बिना किसी क्लेश के कर्म करते रहो ! उसके खेल को दरिद्र बस्तियों में देखो, विशाल कक्षों में देखो ! जन-साधारण को ऊपर उठाने के लिए कार्य करो ! इसलिए नहीं कि वे अधम या पतित हैं; कृष्ण ऐसा नहीं कहते

हम जीवन में जो भी करते हैं, उससे अपने को तदाकार कर देते हैं। एक व्यक्ति मुझसे कड़े शब्द कहता है। मैं क्रोध आता अनुभव करता हूँ। कुछ क्षणों में क्रोध और मैं एक हो जाते हैं, और तब क्लेश आता है। अपने को केवल ईश्वर से संलग्न करो और किसी वस्तु से नहीं, क्योंकि और सब वस्तुएँ असत्य हैं। असत् में आसक्ति क्लेश उत्पन्न करेगी। केवल एक ही सत्ता है जो सत्य है, केवल एक ही जीवन है जिसमें न विषय है, न (विषयी)।···

किंतु अनासक्त प्रेम तुमको हानि नहीं पहुँचायेगा। कुछ भी करो--विवाह करो, बच्चे होने दो जो अच्छा लगे वह करो—कुछ भी तुमको हानि नहीं करेगा। 'मेरा' का विचार लेकर कुछ न करो। कर्तव्य-कर्तव्य के लिए; कर्म-कर्म के लिए। वह तुम्हारे लिए क्या है ? तुम उससे अलग खड़े हो।

जब हम उस अनासक्ति तक पहुँचते हैं, तभी जगत के आश्चर्यजनक रहस्य को समझ सकते हैं; कैसे वह (जगत्) तीव्र क्रियाशीलता और स्पंदन है, तथा साथ ही गहन शांति और निश्चलता भी है; किस प्रकार वह प्रतिक्षण कार्य और प्रतिक्षण विश्राम भी है। वही इस जगत् का रहस्य है—एक ही में वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक, एक ही में ससीम और असीम। तभी हम उस रहस्य को प्राप्त कर सकेंगे। 'वह जो प्रखर कर्म के मध्य महत्तम अकर्म, और महत्तम अकर्म में प्रखर कर्म देखता है, योगी का पद लाभ कर चुका है।" वही सच्चा कर्मी है,

अन्य कोई नहीं। हम अल्प सा कर्म करते हैं और अपने को ध्वस्त कर डालते हैं। क्यों? हम उस कर्म के प्रति आसक्त हो जाते हैं। यदि हम उससे आसक्त न हो जायँ, तो उसके साथ-साथ हमें अनन्त विश्राम भी प्राप्त होगा।...

अनासक्ति के इस रूप तक पहुँच पाना है कितना कठिन! अतएव कृष्ण हमें निम्नतर मार्ग और पद्धतियाँ दिखलाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए सबसे सरल मार्ग है, (अपना) कार्य करना और फलों को ग्रहण न करना। यह हमारी तृष्णा है, जो हमें बांधती है। यदि हम कर्मों के फलों को ग्रहण करते हैं, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, तो हमको उन्हें सहन करना ही पड़ेगा। किन्तु यदि हम कर्म स्वयं अपने लिए न करके पूर्ण-रूपेण प्रभु की महिमा के निमित्त करें, तो फल अपनी चिंता स्वयं ही कर लेंगे। 'कर्म करने का ही अधिकार तुम्हें है, उनके फलों का नहीं। सैनिक फलों के लिए कर्म नहीं करता। वह अपना कर्तव्य करता है। यदि पराजय होती है, तो वह सेनानी की है, सैनिक की नहीं। हम अपना कर्म प्रेम के निमित्त करते हैं—सेनानी के प्रति प्रेम, प्रभु के प्रति प्रेम के निमित्त।

यदि तुम सबल हो, तो वेदांत दर्शन को ग्रहण कर स्वाधीन हो जाओ। यदि तुम वह नहीं कर सकते, तो ईश्वर की उपासना करो; यदि वह नहीं, तो किसी प्रतिमा की पूजा करो। यदि वह भी करने की शक्ति तुममें न हो, तो लाभ के विचार से रहित होकर कुछ शुभ कर्म करो। तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब प्रभु की सेवा में समर्पित कर दो। लड़ते रहो। 'पत्र, पुष्प और जल— मेरी वेदी पर कोई भी व्यक्ति जो कुछ चढ़ाता है, मैं उसे एक समान प्रसन्नता से ग्रहण करता हूँ। यदि तुम कुछ भी, एक शुभ कर्म तक नहीं कर सकते तो (प्रभु की) शरण लो। 'ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित है, और वह उनको अपने चक्र पर भ्रमाया करता है। अपने संपूर्ण हृदय और आत्मा से तू उनकी शरण में जा।...

प्रेम के इस सिद्धांत पर कृष्ण ने (गीता में) जिन सामान्य भावों का उपदेश दिया है, उनमें से कुछ ये हैं। प्रेम पर प्रवचन अन्य ग्रन्थों (में) भी हैं, जैसे बुद्ध के, ईसा के।

अब कृष्ण के जीवन के सम्बन्ध में कुछ शब्द। ईसा और कृष्ण के जीवन में प्रचुर मात्रा में सादृश्य मिलता है। इस बात पर वाद-विवाद चल रहा है कि कौन किसका ऋणी है। दोनों ही स्थानों में में एक अत्याचारी राजा था। दोनों का ही जन्म चरनी में हुआ। दोनों के माता-पिता बन्दी थे। दोनों की रक्षा देवदूतों ने की। दोनों दृष्टांतों में उस वर्ष जन्मे सभी लड़कों की हत्या कर दी गयी। बचपन एक ही जैसा है। अंततः दोनों की हत्या हुई। कृष्ण की मृत्यु दुर्घटना से हुई; जिस व्यक्ति ने उन्हें मारा था, उसे वे स्वर्ग ले गये। ईसा की हत्या हुई, उन्होंने उस डाकू को आशीष दिया और उसे स्वर्ग ले गये।

नव व्यवस्थान और गीता के उपदेशों में भी बहुत सी समानताएँ हैं। मानव विचारणा उसी पथ पर चलती है। ...मैं स्वयं कृष्ण के शब्दों में ही तुम्हारे लिए उत्तर खोज दूंगा। 'जब जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, मैं अवतार लेता हूँ! बार-बार मैं आता हूँ : अतएव, जब कभी तू किसी महान् आत्मा को मानव जाति का उत्थान करने से निमित्त संघर्ष करतो देख, जान ले कि मैं आया हूँ,...।

वे अपनी स्वाधीन इच्छा से आते हैं और विराट् आध्यात्मिक शक्ति से मुक्त होने के लिए वे विवश हैं। हम उसका प्रतिरोध नहीं कर सकते। मानव जाति का विशाल समूह आध्यात्मिकता के इस भंवर में खिच आता है, और इन (महान् आत्माओं) में से किसी एक का आघात मिलने के

कारण उसका स्पंदन चलता ही जाता है। संपूर्ण मानव जाति के मुक्त हो जाने तक यह इसी प्रकार चलता रहता है और इस पृथ्वी का खेल समाप्त हो जाता है।

गरिमान्वित हों वे महान् आत्माएं, जिनकी जीवनियों का अनुशीलन हम अभी कर चुके हैं। वे संसार के जीवंत देवता हैं। वे वह व्यक्ति हैं, जिनकी हमें पूजा करनी चाहिए। यदि वह मेरे पास आये, तो मैं उसे केवल तभी पहचान पाऊँगा, जब वह मनुष्य का रूप धारण कर ले। वह है तो सर्वत्र, किंतु क्या हम उसे देख पाते हैं? हम उसे केवल तभी देख सकते हैं, जब वह मानव की सीमा अंगीकार करे! ...यदि मनुष्य...और पशु ईश्वर की अभिव्यक्ति हैं, मानव जाति के ये शिक्षक नेता हैं, गुरु हैं। अतएव, उन तुमको अभिवंदन, जिनके पादपीठ की उपासना देवदूत करते हैं! अभिवंदन, तुम मानव जाति के नेताओं का! अभिवंदन, तुम महान् शास्ताओं का! तुम नेताओ, सदा-सदा के लिए हमारा अभिवंदन ग्रहण करो!

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये
२३.	श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४.	श्री शतदल साधु खान	—	सोनारपुर(पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५.	श्री ए० जी० डगाँवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये
२६.	श्रीमती उषा गुप्ता	—	रायपुर (म० प्र०)	२०० रुपये
२७.	श्री पी० राम	—	पटना (बिहार)	२५१ रुपये
२८.	टी० रघुवीर राव	—	उडुपी (कर्नाटक)	२५ रुपये

निवेदन— १ स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

श्रीरामकृष्ण की अन्त्य लीला

—स्वामी प्रभानन्द
अनु०— डॉ० नन्दिता भार्गव

चौबीस

आज शनिवार है, ३१ अक्टूबर १८८५। दिन के नौ बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण के पास हरिबल्लभ बाबू आये हैं। हरिबल्लभ भक्त बलराम के चचेरे भाई है। वे कटक के सबसे बड़े वकील हैं। उन्होंने जब यह सुना कि बलराम श्रीरामकृष्ण देव के पास आया-जाया करते हैं और विशेषकर स्त्रियों को ले जाते हैं, तब वे बहुत नाराज हुए। (उनसे मिलने पर बलराम ने कहा था, तुम पहले एक बार उनके दर्शन करो, फिर जो जी में आये मुझे कहना) अतएव आज हरिबल्लभ आये हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को भक्ति भाव से प्रणाम किया। दो चार बातों के बाद श्रीरामकृष्ण ने कहा,---"स्त्रियाँ जब मेरे पैरों को धूलि लेती हैं तब यही सोचता हूँ कि भीतर तो वे ही हैं, वे उन्हीं को प्रणाम कर रही हैं, इसी दृष्टि से देखता हूँ। हरिबल्लभ—आप साधु हैं, आपको सब लोग प्रणाम करेंगे, इसमें दोष क्या है?

श्रीरामकृष्ण—"हाँ, वह हो सकता था अगर ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, कपिल, में कोई होते; पर मैं क्या हूँ? अच्छा आप फिर आइयेगा।

हरिबल्लभ—जी, हम लोग आप की ओर खिंच कर आयेंगे, आप कहते क्यों हैं?

हरिबल्लभ विदा होंगे। प्रणाम कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने पैर हटा लिये। परन्तु हरिबल्लभ ने छोड़ा नहीं, जबरदस्ती उन्होंने परों को धूलि ली। हरिबल्लभ चले गये।

श्रीरामकृष्ण—(मास्टर महाशय से)—उसमें भक्ति है, नहीं तो जबरदस्ती पैरों को धूलि क्यों लेता? "वह बात जो तुमसे मैंने कही थी कि नाव में मैंने डाक्टर को देखा था तथा एक आदमी और था—यह वही है! इसलिये देखो आया।"

विद्वान, बुद्धिमान, परोपकारी, भक्तिमान हरिबल्लभ कान के कुछ कच्चे थे। किसी आत्मीय से सूचना पाकर उन्होंने बलराम के विषय में गलत धारणा कर ली थी। अब वे स्वयं सब कुछ देखने कलकत्ते आये है। (श्रीरामकृष्ण के साथ बलराम की घनिष्टता उनके आत्मीय जनों को अच्छी नहीं लगी, कारण उन्हें भय था कि बलराम के भीतर दया और त्याग-वैराग्य का भाव प्रबल होने से कहीं वे गृहस्थ आश्रम का परित्याग न कर दें। बलराम के पास एक पत्र आया था कि स्वजनों द्वारा गुप्त समाचार पाकर उनके भाई उनसे असन्तुष्ट हैं और हरिबल्लभ बाबू कोई विशेष प्रयोजन से कलकत्ते आ रहे हैं। इस समाचार से बलराम चिंतित थे कि कहीं घटना चक्र उन्हें श्रीरामकृष्ण देव के पास से दूर न ले जाय। ("हरिबल्लभ बसु के कलकत्ते आने के दिन बलराम जब श्रीरामकृष्ण के निकट उपस्थित हुए तो वे उनकी आकृति देखते ही समझ गये कि उसके मन में एक अन्तंद्वन्द्व चल रहा है। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और पूछताछ करके सारी बातें जान लीं और कहा, वह (हरिबल्लभ बसु) कैसा आदमी है? उसे एक दिन यहाँ ला सकते हो?" बलराम ने कहा, आदमी अच्छे हैं महारज, विद्वान, बुद्धिमान, उदार, परोपकारी है, दान भी बहुत करते हैं,

भक्तिमान भी हैं —रही दोष की बातें तो जो बड़े आदमी में हुआ करती है—कान के कुछ कच्चे हैं। मालूम होता है दूसरों के कहने से मेरे बारे में कुछ शक कर लिया है। मैं यहाँ आता हूँ, इस कारण मेरे ऊपर नाराज हैं। मेरे कहने से क्या वे यहाँ आयेंगे ? श्रीरामकृष्ण ने कहा "तो तुम रहने दो, तुम न बोलो, गिरीश को जरा बुला दो।" गिरीश ने आकर आनन्द से उस कार्य भार को ले लिया। दूसरे दिन सांयकाल पाँच बजे गिरीशचन्द्र हरिबल्लभ बाबू को साथ ले कर श्रीरामकृष्ण के पास आये और उनसे उनका परिचय कराते हुए कहा, मेरे बाल्य बन्धु, कटक के सरकारी वकील हरिबल्लभ बसु हैं, आपके दर्शनार्थ आये हैं, "श्रीरामकृष्ण ने यह सुनकर उन्हें प्यार के साथ अपने पास बिठाया और कहा, "तुम्हारी बात अनेक लोगों से सुनकर तुम्हें देखने की इच्छा होती थी। फिर मन में डर भी होता था कि यदि दुनियादारी बुद्धि हो। (गिरीश की ओर इशारा करके) किन्तु अब देखता हूँ वैसा नहीं है, (हरिबल्लभ बसु को दिखाकर) यह तो बालक-सा निष्कपट हैं, (गिरीष से) कैसी आँखें हैं, देखो ? भक्ति पूर्ण अन्तर हुए बिना ऐसे नेत्र कभी नहीं होते। (हरिबल्लभ बाबू को एकाएक स्पर्श करके) हाँ जी, डर तो दूर की बात है, तुम तो एक दम अपने मालूम होते हो। "हरिबल्लभ बाबू ने उन्हें प्रणाम किया और चरणों को धूल लेते हुए कहा "यह तो आपकी कृपा है।" "गिरीशचन्द्र ने कहा, "जिस वंश में इनका जन्म हुआ है, उससे भक्तिमान होना ही चाहिये। स्वर्गीय श्री कृष्णराम बसु के भक्ति भाव ने उन्हें प्रातः स्मरणीय कर रखा है। उनकी कीर्ति से देश उज्ज्वल हो रहा है। उनके वंश में जो लोग जन्म ग्रहण किये हैं, वे भक्तिमान अवश्य ही होंगे।

इस प्रकार भगवद् भक्ति का प्रसंग उठा और यह कहते-कहते कि ईश्वर में विश्वास, भक्ति और पूर्ण निर्भरता ही मनुष्य जीवन का परम ध्येय है, श्रीरामकृष्णदेव को भावावेश हुआ। इसके अनन्तर अर्ध बाह्य दशा में उतरकर श्रीरामकृष्ण देव ने हम में से एक को एक भजन गाने के लिए कहा और उसका आशय हरिबल्लभ बाबू को धीमे स्वर से समझाते हुये पुनः गम्भीर भाव में तल्लीन हो गये। संगीत के सम्पूर्ण होने पर दिखायी पड़ा कि—हरिबल्लभ बाबू के नेत्रों से प्रेमाश्रुधारा बहने लगी। सन्ध्या बीत जाने पर हरिबल्लभ बाबू ने उस दिन श्रीरामकृष्ण से बिदा ली।"

श्रीरामकृष्ण की बीमारी का हाल लेकर मास्टर महाशय डाक्टर के पास आये हुये हैं।

श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में डाक्टर कह रहें हैं—"केवल भक्ति लेकर क्या होगा, अगर ज्ञान न हो ?" मास्टर महाशय—"श्रीरामकृष्ण तो कहते हैं, ज्ञान के बाद भक्ति हैं; परन्तु उनके ज्ञान और भक्ति से आप लोगों के ज्ञान और भक्ति में बड़ा अन्तर है।"

वे जब कहते हैं, ज्ञान के बाद भक्ति है तो उसका अर्थ यह है कि पहले तत्व ज्ञान होता है और बाद में भक्ति। पहले ब्रह्मज्ञान और बाद में भक्ति। पहले भगवान बाद में ज्ञान, फिर उनके प्रति प्रेम। आप लोगों के ज्ञान का अर्थ है, इन्द्रियजन्य ज्ञान। श्रीरामकृष्ण जिस ज्ञान की चर्चा करते हैं, उसकी परख हमारे मापदण्ड द्वारा नहीं हो सकती। परन्तु आपका ज्ञान तो इन्द्रिय-जन्य है, उसकी परख हो सकती है।" डाक्टर कुछ देर चुप रहे, फिर अवतार के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हैं। दिन के ग्यारह बजे का समय होगा प्रभुदयाल मित्र नामक केवट सम्प्रदाय के एक ईसाई भक्त के साथ बात-चीत हो रही है। बाहर से तो साहसी वेश-भूषा धारण किये हुये हैं, परन्तु भीतर गेरुआ वस्त्र पहने

है। इनके एक भाई के विवाह के दिन इनके दूसरे दो भाइयों की शामियाना से दबकर मृत्यु हो गई थी, तब से मिश्र ने संसार का त्याग कर दिया है।

प्रभुदयाल "वही राम घट-घट में लेटा।"

श्रीरामकृष्ण धीरे-धीरे कह रहे हैं, "राम एक ही हैं, परन्तु उनके नाम हजारों हैं, "ईसाई जिन्हें गॉड कहते हैं, हिन्दू उन्हें ही राम, कृष्ण और ईश्वर कहकर पुकारते हैं। तालाब में बहुत से घाट हैं। हिन्दू एक घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं "जल" ईसाई दूसरे घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं, "वाटर" मुसलमान तीसरे घाट में पानी पीते हैं, 'पानी'। "इसी प्रकार जो ईसाई का गॉड है वहीं मुसलमानों का "अल्हा" है।

प्रभुदयाल मिश्र—ईशु मेरी का लड़का नहीं है, ईशु साक्षात् ईश्वर है।

प्रभुदयाल (भक्तों से)—ये 'श्रीरामकृष्ण' अभी तो ऐसे दिखते हैं, पर ये साक्षात् ईश्वर हैं। आप लोगों ने इन्हें पहचाना नहीं। मैं पहले ही इनके दर्शन ध्यान में कर चुका हूँ—अब इस समय इन्हें साक्षात् देख रहा हूँ। मैंने देखा था, एक बगीचा है, ये ऊंचे आसन पर बैठे हुये हैं, जमीन पर एक व्यक्ति और बैठे हुये हैं—वे इतने पहुँचे हुए नहीं थे।

"इस देश में ईश्वर के चार द्वारपाल हैं। बंबई प्रान्त में तुकाराम, कश्मीर में राबार्ट माइकेल, यहाँ ये और पूर्व बंगाल में एक और हैं"

श्रीरामकृष्ण (प्रभुदयाल से)—"तुम्हें कुछ दर्शन होता है क्या?"

प्रभुदयाल—"जी, जब मैं घर पर था, तब ज्योति-दर्शन होता था। इसके बाद ईशु को मैंने देखा। उस रूप की बात अब क्या कहूँ।—उस सौन्दर्य के सामने स्त्री का सौन्दर्य खाक है।"

श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो रहे हैं। पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हुये वे समाधिमग्न हो गये। कुछ प्रकृतिस्थ होने पर मिश्र पर दृष्टि डालकर हँस रहे हैं। भावावेश में मिश्र से हाथ मिलाते हुऐ हँस रहे हैं। हाथ पकड़कर कह रहे हैं। "तुम जो चाहते हो, वह प्राप्त हो जायेगा।" श्री रामकृष्ण ईशु के भाव में है। प्रभुदयाल (हाथ जोड़कर)—उस दिन से मैंने अपना मन, अपने प्राण, अपना शरीर, सब कुछ आपको समर्पित कर दिया है।

श्रीरामकृष्ण भावावस्था में हँसते रहे।

डाक्टर सरकार आये हैं। डाक्टर को देखकर श्री रामकृष्ण समाधिस्थ हो गये। भाव का कुछ उपशम होने पर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"कारणानन्द के बाद सच्चिदानन्दः—कारण का कारण।"

श्रीरामकृष्ण को ईश्वरावेश है। श्रीरामकृष्ण हँसकर गाने लगे—"मैं सुरा-पान नहीं करता, किंतु जय काली कहकर सुधापान करता हूँ।"

गाना सुनकर डाक्टर सरकार को भावावेश हो गया। श्रीरामकृष्ण को भी पुनः भावावेश हो गया। उसी आवेश में उन्होंने डाक्टर की गोद में एक पैर बढ़ाकर रख दिया। कुछ देर बाद भाव का उपशम हुआ। तब पैर खींचकर उन्होंने डाक्टर से कहा, 'अहा, तुमने कैसी सुन्दर बात कही है। उन्हीं की गोद में बैठा हुआ हूँ। बीमारी की बात उनसे नहीं कहूँगा तो और किससे कहूँगा? बुलाने की आवश्यकता होगी तो उन्हें ही बुलाऊँगा।"

यह कहते हुए श्रीरामकृष्ण की आँखें आँसुओं से भर गयीं। वे फिर भावाविष्ट हो गये। उसी अवस्था में डाक्टर सरकार से कह रहे हैं—"तुम खूब शुद्ध हो। नहीं तो मैं पैर न रख सकता।" फिर कह रहे हैं—"शान्त वही है जो रामरस चखे।"

'विषय क्या है? उसमें क्या है?—रुपया, पैसा, मान, शरीर-सुख इनमें क्या है? ऐ दिल,

जिसने राम को नहीं पहचाना, उसने फिर पहचाना ही क्या !"

बीमारी की इस अवस्था में श्रीरामकृष्ण को भावावेश में रहते देखकर भक्तों को चिन्ता हो रही है। श्रीरामकृष्ण—"उस गाने के हो जाने पर मैं रुक जाऊँगा—हरि-रस-मदिरा—।"

नरेन्द्र एक दूसरे कमरे में थे, बुलाये गये। उन्होंने एक के बाद एक तीन गाने गाये। (१) हरिरस मदिरा पीये मम मानस मातो रे, (२) चिदानन्द सागर में (३) चिन्मय मम मानस हरि चिद्‌घन निरंजन।

जब गाना समाप्त हो गया तो डाक्टर सरकार ने कहा,—"यह गाना अच्छा है—'चिदानन्द-सागर…"

डाक्टर को इस प्रकार प्रसन्न देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा, "लड़के ने बाप से कहा, 'पिताजी, आप थोड़ी सी शराब चख लीजिये और उसके बाद यदि मुझसे कहेंगे कि मैं शराब पीना छोड़ दूँ, तो छोड़ दूंगा।' शराब चखने के बाद बाप ने कहा, 'बेटा, तुम चाहो तो शराब छोड़ दो, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मैं स्वयं तो अब निश्चय ही न छोड़ूँगा।'

"उस दिन माँ ने मुझे दो व्यक्ति दिखाये थे। उनमें से एक तुम्हें बहुत ज्ञान होगा, पर वह शुष्क ज्ञान रहेगा।"

श्रीरामकृष्ण (डाक्टर की ओर देखकर मुस्कराते हुए) बोले "पर धीरे-धीरे तुम नरम हो जाओगे।"[2]

[१] श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, तृतीय खंड, पृ० २५१-२५४।
[२] श्रीरामकृष्ण वचनामृत, तीसरा भाग, पृ० ४४८-४५६ से लिया गया है।

स्वामी विवेकानन्द की भारत परिक्रमा एवं धर्म महासम्मेलन की तैयारी

स्वामी विमलात्मानन्द
अनुवादक— ब्रह्मचारी गौरी शंकर
बेलुड़मठ

(भाग — ४)

पवहारी बाबा के समीप स्वामी विवेकानन्द की दीक्षा ग्रहण की इच्छा एवं बाद में उसे त्याग करने का क्या कोई विशेष अर्थ है ? स्वामी गम्भीरानन्द ने लिखा है :

…… इस अभिज्ञता के द्वारा श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी के मुख से इस वाणी का प्रचार किया कि, उन्हें छोड़कर अन्यत्र जाना व्यर्थ है।[60]

प्रसंगतः यह उल्लेखनीय है कि बाद में स्वामी जी ने विख्यात कविता "गाता हूँ गीत में तुम्हें ही सुनाने को" ('गाई गीत सुनाते तोमाय') में अपनी इस मानसिक स्थिति का वर्णन बड़े ही विलक्षण शब्दों में किया है :—

"गाता हूँ गीत में तुम्हें ही सुनाने को,
भले और बुरे की—

लोक-निन्दा, यश-कथा की,
नहीं परवाह मुझे,
दास हूं तुम दोनों का,
सशक्तिक चरणों में प्रणाम है तुम्हारे देव।
पीछे खड़े रहते हो,

इसीलिए हंसते हुए मुख को
मैं देखता हूं बार-बार मुड़कर।
बाल-केलि करता हूं तुम से मैं
और क्रोध करके देव
तुमसे किनारा कर जाना कभी चाहता हूं।
किन्तु निशा-काल में
शय्या के शिरोभाग में,
देखता हूं तुमको मैं खड़े हुए,
चुपचाप आंखें छलछलाई हुई,
हेरते हो तुम मुख की ओर।

उसी समय बदल जाता भाव मेरा,
पैरों पड़ता हूं,
पर क्षमा नहीं मांगता,
तुम नहीं करते हो रोष।

पुत्र हूं तुम्हारा, कहो,
और कोई कैसे इस प्रगल्भता को
सहन कर सकता है ?
प्रभु हो तुम मेरे
तुम प्राण सखा मेरे हो।[३]

गाजीपुर से स्वामीजी काशी होते हुए वराहनगर मठ सन् १८९० ई० के अप्रैल माह के दूसरे सप्ताह में लौट आये। गाजीपुर के प्रथम आगमन के समय या गाजीपुर त्याग के समय ताड़ीघाट रेलवे स्टेशन पर एक उल्लेखनीय घटना घटी थी। एक गैर बंगाली भोजन-विलासी व्यवसायी ने स्वामीजी का खूब उपहास-व्यंग किया। धनहीन क्षुधार्त एवं सूखे वदन स्वामीजी को दिखा-दिखा कर वह पूड़ी, कचौड़ी, पेड़ा, मिठाई खाते हुए पैसों की महिमा का वर्णन करने लगा। देखा, पैसों की क्या क्षमता है। तुम तो पैसा-कौड़ी रखते नहीं हो, उसका फल देखो; और मैं पैसा-कौड़ी; रोजगार करता हूं, उसका फल देखो। यह सब पूड़ी-कचौड़ी, पेड़ा, मिठाई क्या बिना पैसों के होता है ?

ठीक उसी समय एक साधारण हलवाई पूड़ी, मिठाई, ठंडा, गरम इत्यादि लेकर स्वामीजी के पास उपस्थित हुआ एवं उनसे ग्रहण करने के लिए बहुत निवेदन करने लगा। स्वामीजी तो अवाक् रह गये, विलासी, उपहास करनेवाला व्यवसायी भी विस्मय से हतवाक् हो गया। स्वामीजी ने बार-बार अपने आप को हलवाई से निवृत कर लेना चाहा, इस पर उसने अपने स्वरूप में अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी के इस कार्य के लिए आदेश की बात कही। विस्मित एवं अभिभूत स्वामीजी ने इस समय वह—भोजन ग्रहण कर लिया। उपहास कर्त्ता व्यवसायी को होश हुआ। उसे विश्वास हुआ कि स्वामीजी निश्चित रूप से एक उच्चकोटि के महात्मा है। अनुतप्त हृदय से स्वामीजी के पास आकर उसने क्षमा याचना की।

स्वामीजी ने हलवाई के हृदय की भावनाओं से परिचय पाया। उसी के साथ उन्होंने भारत के जन साधारण के सनातन धर्म में विश्वास का ज्वलन्त उदाहरण पाया। उन्होंने देखा भारत के साधारण मनुष्य का ईश्वर विश्वास कितना गभीर एवं उनकी भगवद्भक्ति कितनी अकृत्रिम हैं।

अप्रैल से जुलाई १८९० के मध्यभाग तक स्वामीजी वराहनगर मठ में थे। इसी समय उन्होंने एक सुदीर्घ परिव्राजक जीवन ग्रहण करने का निश्चय किया। प्रिय गुरुभ्राता स्वामी अखण्डानन्द एक भ्रमण विशेषज्ञ थे, मुख्य रूप से पहाड़ी अंचलों के लिए। उन्हें संगी रूप में स्वामीजी ने साथ लेने का निर्णय किया। इसी उद्देश्य से पत्र लिखकर स्वामीजी ने उन्हें मठ में

आने को कहा। अखण्डानन्दजी अपने प्रिय नेता का आदेश शिरोधार्य कर मध्य एशिया का भ्रमण बन्द कर वराहनगर मठ शीघ्रता से चले आये।

स्वामी गम्भीरानन्द ने स्वामीजी के इस सुदीर्घ परिव्राजक जीवन की एक संक्षिप्त व्याख्या की है। उन्होंने लिखा है—"उच्च प्रकृति सम्पन्न ईश्वर कोटि वाले वे (स्वामीजी) सर्वदा समुचित रूप से जगत को सर्वदा विस्मृत करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। पुनः श्रीरामकृष्ण की बातों को लोक कल्याणार्थ काम में लाने के लिए गुरुदायित्व भी सर्वदा उनके हृदय में जागृत रह कर प्रतिक्षण उनके अन्तर्मुखी मन को वहिर्जगत के दुःख-दारिद्रय के प्रति आकृष्ट कर रहा था। उनका करुणाविगलित हृदय उसके प्रतिकार का उपाय खोजने के लिए व्याकुल रहता था।... उनके जीवन के महाव्रत का परिपालन हेतु भगवन्निर्देश से और भी अभिज्ञात संचय करने एवं और भी निरालम्ब स्थानों का प्रयोजन था। हो सकता था दो-चार बन्धु लोगों की सहायता मात्र के ऊपर मठ की भित्ति स्थापित न रह कर विराट विश्व की शुभेच्छा के ऊपर उसका प्रतिष्ठित होना आवश्यक था। .... उसके उपाय का अन्वेषण अत्यावश्यक था। हो सकता है उसी राष्ट्रीय परिकल्पना को लेकर उन्होंने सुदीर्घ भारत भ्रमण के लिए निकलने का मन में निश्चय किया।[53]

सुदीर्घ परिक्रमा के पूर्व स्वामीजी और अखंडानन्दजी वेलुड़ के पास ही घुसुरी में अवस्थान करती हुई श्री श्री माँ के आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करने गये। स्वामीजी श्री श्री माँ की चरण वन्दना के बाद बोले : माँ! जब तक, मैं श्रीगुरु प्रदत्त कार्य को सम्पन्न नहीं करूँगा, तब तक फिर नहीं लौटूँगा; तुम आशीर्वाद दो जिससे हमारा संकल्प सिद्ध हो जाय।" श्री श्री माँ ने भी मन से आशीर्वाद दिया। स्वामीजी का हृदय एक दिव्य भाव से परिपूर्ण हो गया। उनके मन में हुआ—वे एक ऐसी महाशक्ति से युक्त हो गये जो बाधा, विपत्ति, संशय, द्वन्दादि में उन्हें अविचलित रखेगी, यहाँ तक कि मृत्यु की विभीषिका पर्यन्त भी उन्हें संकल्पच्युत नहीं कर सकती।"[54]; इसी के साथ श्री श्री माँ ने अखण्डानन्दजी को आदर्श दिया कि वे स्वामीजी का यथोचित देख-रेख करेंगे। सन् १८७० ई० में जुलाई के मध्य में मठ त्याग करने के बाद स्वामीजी प्रायः सात वर्षों के बाद ही लौटे थे।

स्वामीजी एवं अखंडानन्दजी सन् १८७० ई० के अगस्त माह में भागलपुर गये। यहाँ नित्यानन्द कुमार साहब नामक एक व्यक्ति से उनका परिचय हुआ। प्रथम दर्शन में ही कुमार साहब समझ गये कि ये लोग कोई साधारण साधु नहीं हैं—विशेषकर स्वामीजी अति प्रतिभावान हैं। कुमार साहब के गृह शिक्षक ब्राह्म मन्मथ चौधरी के घर स्वामीजी सात दिन थे। स्वामीजी ने अपने वाग्वैभव एवं विशाल आध्यात्मिक ज्ञान की सहायता से उन्हें हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धाशील कर दिया। यहाँ तक कि मन्मथ बाबू ने राधाकृष्ण लीला को भी सत्य कहकर स्वीकार किया था। स्वामीजी एक दिन महात्मा पार्वतीचरण मुखोपाध्याय को एवं एक अन्य दिन नाथनगरके जैन मंदिर देखने गये थे। जैन आचार्यों ने स्वामीजी का जैन दर्शन में पाण्डित्य देखकर संतोष प्रकट किया। मन्मथ बाबू की स्मृति कथा से इस काल में स्वामीजी की भारत चिन्ता की बात स्पष्ट होती है। "उन्होंने (स्वामीजी) ने जो भी नयी बात कही थी, उनमें दो बातें हमारे मन को लग गयी थीं। प्राचीन ऋषियों के ज्ञान, बुद्धि एवं प्रतिभा का जो कुछ अवशिष्ट है अभी भी उन सभी स्थानों में पाया जाता है जो गंगा के तीर पर पास ही अवस्थित है। गंगा से जितनी ही

दूर जाया जाय वह कम होती जाती है। इस विषय की तरफ देखने से प्राचीन शास्त्रों में जो गंगा माहात्म्य का वर्णन मिलता है इस पर विश्वास बढ़ता है।' 'निरीह हिन्दू'—इस बात को एक गाली की तरह न लेकर बल्कि उसे हमलोगों के चरित्र के महत्त्व का प्रकाशक रूप में गौरवपूर्ण ढंग से लेना उचित है।'[५६] कुमार साहब के एक अन्य मित्र गृह शिक्षक मथुरानाथ सिंह (बाद में पटना हाईकोर्ट के विख्यात वकील) ने स्वामीजी के भागलपुर में अवस्थान के सम्बन्ध में लिखा है। उनके साथ मेरी अनेक विषयों पर चर्चा हुई—जैसे साहित्य दर्शन एवं धर्म; विशेष कर अन्तिम दो विषयों पर। मेरे मन में हुआ था, विद्या एवं दर्शन मानो उनके निःश्वास प्रश्वास के साथ मिल गये थे। मैं समझ पाया था उनके उपदेश का मूल तथ्य था एक सुगंभीर स्वार्थलेश-शून्य देश प्रेम एवं। उसी के मिश्रित प्रभाव से वे अपनी बातों को जीवन्त कर देते थे। यहाँ पर ही उनके चरित्र का शाश्वत रूप था। जब मैंने शिकागो धर्म महासभा में उनकी सफलता का संवाद पढ़ा तो मन में हुआ कि अब भारत ने अपने प्रकृत नेता को प्राप्त किया है।

भागलपुर में रहने के बाद स्वामीजी एवं अखण्डानन्दजी वैद्यनाथ धाम गये। वहाँ उनलोगों ने सुविख्यात ब्राह्मण धर्म प्रचारक राजनारायण वसु के साथ भेंटकर वार्तालाप किया। वैद्यनाथ धाम से स्वामीजी काशीधाम एवं अयोध्या दर्शन कर अपने चिर-आकांक्षित नगाधिराज हिमालय की गोद में पहुँचे। सर्वप्रथम वे नैनीताल में ठहरे। वहाँ बाबू रमा प्रसन्न (अंग्रेजी जीवनी के अनुसार राम प्रसन्न) भट्टाचार्य के घर वे लोग छः दिनों तक थे। नैनीताल से स्वामीजी अलमोड़ा गये। उनलोगों का उद्देश्य था बदरीनारायण का दर्शन अलमोड़ा में रास्ता चलते-चलते एक दिन स्वामीजी ने एकाकी वन के बीच जाना चाहा। अखण्डानन्दजी को उन्होंने निर्देश दिया कि वे मुख्य रास्ते से जाएं। अखण्डानन्दजी ने लिखा है; "कुछ दूर जाने बाद, स्वामीजी को देखा, वे अकेले थे, किन्तु हँस रहे थे; किसके साथ वे बात कर रहे कि उनकी आँखों में एवं चेहरे पर आनन्द का एक ऐसा भाव खेल रहा था। मैंने पूछा; भाई, किसके साथ बात कर रहे थे?' वे चुप रहकर केवल मुख पर हाथ रख कर हँसने लगे।"[५७] पुनः एक दिन उसी भाव में जाते-जाते स्वामीजी ने अखण्डानन्द जी से कहा। "तुम रास्ते से जाओ, मैं जंगल के भीतर से जाकर उधर तुमसे मिलूँगा।" स्वामीजी के रास्ते में कुछ दूर जाने पर अखण्डानन्दजी ने वन में प्रवेश कर देखा कि वन के बीच में एक स्थान पर कई फूल खिले हैं—चारों तरफ से सुगन्ध आ रही है, एवं वहाँ श्री श्री ठाकुर एवं स्वामीजी आलिंगनबद्ध थे। एकान्त में इस दृश्य को देख कर उनका मन आनन्द से परिपूर्ण हो गया।[५८]

अलमोड़ा के रास्ते में पानीचाकी में एक निर्झरणी के किनारे एक विराट अश्वत्थवृक्ष के नीचे स्वामीजी ध्यान करने बैठे। ध्यान टूटने के बाद उन्होंने अखण्डानन्दजी से कहा। 'देखो, गंगाधर, इस वृक्ष के नीचे एक महाशुभ मुहूर्त कट गया, आज एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान हो गया। मैं समझ गया कि समष्टि और व्यष्टि (विश्व ब्रह्मांड एवं अणु ब्रह्मांड) एक ही नियम से चलते हैं।'[५९] इस अपूर्व अनुभूति की बात स्वामीजीने अपनी डायरी में लिख रखी। अखण्डानन्दजी ने बाद में देखा स्वामीजी ने लिखा था—मैंने आज लघु ब्रह्मांड एवं विराट ब्रह्मांड में एकात्म अनुभव किया है, विश्व में जो कुछ है वह इसी क्षुद्र देह में उपस्थित है। देखा प्रति परमाणु के बीच विश्व संसार विद्यमान है।'[६०]

संदर्भ

५०. युगनायक विवेकानन्द, प्रथम खण्ड — पृ० २६२
५१. विवेकानन्द साहित्य, नवम खण्ड — पृ० ३२५-३२६
५२. युगनायक विवेकानन्द, प्रथम खण्ड — पृ० २६३-२६५
५३. वही — पृ० २६६-२७०
५४ विवेकानन्द चरित, सत्येन्द्रनाथ मजुमदार — पृ० ७५
५५. युगनायक विवेकानन्द, प्रथम खण्ड — पृ० २७५
५६. वही, — पृ० २७७
५७. स्मृतिर आलोय स्वामीजी, — पृ० १७
५८. स्वामी अखंडानन्द, स्वामी अन्नदानन्द, — पृ० ६८
५९ युगनायक विवेकानन्द, प्रथम खण्ड — पृ० २८०
६० स्वामी विवेकानन्द, प्रमथनाथ वसु, — पृ० १९८५-१९९

यामि गुरुं शरणं भव वैद्यम्

—मोहन सिंह मनराल
अध्या०, इ०का० सुरईखेत, बिठोली
जि०—अल्मोड़ा (उ० प्र०)

भगवान् श्रीरामकृष्णदेव पर रचित एक स्तोत्र में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं 'यामि गुरुं शरणं भववैद्यम्' (संसार रूपी रोग के वैद्य गुरु का मैं आश्रय हूँ।) संसार रूपी रोग से स्वामीजी का क्या आशय है इसका उत्तर हमें श्रीरामकृष्ण की वाणी में मिल जाता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "संसार क्या है", "संसार में कामिनी-कांचन के सिवाय और क्या है। कामिनी-कांचन का भोग करने सभी जाते हैं, परन्तु उसमें दुःख और अशान्ति ही अधिक है। संसार मानो विशालाक्षी नदी का भँवर है। नाव भँवर में पड़ने पर फिर उसका बचना कठिन है। मनुष्य मानो जल सा जाता है संसार करने पर मनकी शक्ति का अपव्यय होता है।"

ठाकुर की वाणी से संसाररूपी व्याधि का पता चलता है जिसमें गृहस्थ मानव सर्वत्र जकड़ा है। इससे यह सिद्ध होता है कि संसार की ज्वालाओं में दग्ध मानव के लिये ही उपचार की सबसे अधिक आवश्यकता है। इस आवश्यकता को मात्र ईश्वर ही समझ सकता है तभी तो हर युग में वह इन्हीं संसार रोग से ग्रस्त-त्रस्त पापी-तापी और दीनहीन दुर्बल मानवों के लिए अवतार के रूप में शरीर धारण कर लीला करता है। धर्म मुक्ति पवित्रता का विवरण कर इन्हें मार्ग दिखाता है। स्वयं कष्ट सहकर, साधना करके धर्म व शास्त्रों को जीवन्त करता है और संसार से बाहर भी कोई वस्तु है इसपर विश्वास करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

वर्तमान युग में भगवान श्री रामकृष्ण देव ने जीवों की मुक्ति के लिए नर देह धारण की। महासमन्वय के रूप में युग प्रयोजन साधित किया। उन्होंने गृहस्थ मानव के लिये आशा व विश्वास

की नई किरण जगाई जो संसार रूपी रोग से सर्वाधिक ग्रहस्त है। मानव के यथार्थ चित्रण के साथ भे हमेशा उसे भवरोगों से मुक्त होने की औषधि बताते नजर आते हैं ताकि वह उत्तरोत्तर उन्नति व विकास के पथ से चलकर उनकी शरण में आ सके।

संसारी बद्ध जीवों की अवस्था और उपचार।—

ससार क्या है यह तो हम ठाकुर के शब्दों में देख चुके अब जरा इसमें आबद्ध लोगों की दशा भी देख लें। ठाकुर इन जीवों की दयनीय दशाका वर्णन करते हुए कह रहे हैं, "बुद्ध जीवों संसारी जीवों को किसी तरह होश नहीं रहता। कितना दुःख पाते हैं। कितना धोखाखाते हैं कितनी विपदायें झेलते हैं फिर भी बुद्धि ठिकाने नहीं होती। ऊँट कंटीली घास को बड़े चाव से खाता है, परन्तु जितना ही खाता है उतना ही मुंह से धर-धर खून गिरता है, फिर भी कंटीली घास को खाना नहीं छोड़ता। संसारी मनुष्यों को इतना शोक ताप मिलता है किन्तु कुछ दिन बीते कि सब भूल गये कभी-कभी तो साँप, छछून्दर वाली गति होती है। न निगल सके न उगल सके। बद्ध जीव कभी समझ भी गया कि संसार में कुछ है नहीं सिर्फ गुठली चाटना है, तो भी बह उसे नहीं छोड़ सकता। ईश्वर की ओर मन नहीं ले जा सकता है।"

श्रीरामकृष्ण देव का कथन कितना यथार्थ है यह कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि संसार में सर्वत्र एक ही दशा दिखाई पड़ती है। पण्डित हो या मुर्ख, धनी हो या निर्धन अधिकांश की दशा ऊँट के समान ही है जो कंटीली घास चाव से खाता है मगर ऊंट व मनुष्य में कुछ अन्तर अवश्य है। जो इस अन्तर को सोच व समझ नहीं सकता है उसे ऊंट कि भांति ही जीना पड़ेगा यह निश्चित है। एक को रेगिस्तान की कंटीली झाड़ियाँ बार-बार खानी पड़ती है तो दूसरे को संसार रूपी यंत्रणाओं में नित्य लहुलुहान होना पड़ता है। ऐसे लोगों की दशा ठीक उन मछलियों के समान होती है जो जाल में फँसकर भी सोचती हैं वह मजे में हैं। ठाकुर इसी बात का चित्रण करते हुए कहते हैं, "अधिकतर मछिलयां जाल में पड़ जाती हैं। उन्हें होश नहीं कि जाल में पड़ी है, अब मरना होगा। जाल में पड़ते ही जाल सहित इधर से उधर जाती हैं कभी कीच में देह छिपाना चाहती हैं। भागने की कोई चेष्टा नहीं बल्कि कीच में और गड़ जाती हैं। यही बद्ध जीव संसार में अर्थात् कामिनी-कांचन में फँसे हुए हैं। कलंक सागर में मग्न हैं और सोचते हैं कि बड़े मजे या आनन्द में हैं।"

ठाकुर ने वद्ध जीवों की दयनीय अवस्था का वर्णन किया मगर उनका लक्ष्य मात्र इतना ही नहीं था। यह तो रोग को दशाओं को उजागर करना जैसा है जिससे रोगी के भीतर अपने रोग के प्रति चिन्ता जाग्रत हो जाय क्योंकि जबतक रोगी यह न समझे कि उसका रोग क्या है, या उसे रोग है भी या नहीं तब तक वह उपचार के लिये कैसे प्रयत्नशील हो सकेगा। ठाकुर रोग के लक्षणों के बाद तुरन्त उपचार भी साथ-साथ प्रस्तुत करते हैं यही उनके उपदेशों में सकारात्मक पहलू नजर आता है। वे रोग और उसका निदान एक साथ प्रस्तुत करते हैं। अब इसी उपदेश को लें। ठाकुर कह रहे हैं, 'भागने की कोई चेष्टा नहीं, बल्कि कीच में और गड़ जाती हैं।' यही एक उपाय सुझाया है 'भागने की चेष्टा' अपनी बद्ध दशा को समझ कर उससे बाहर निकलने की चेष्टा, प्रयत्न या पुरुषार्थ जिससे ठाकुर अभ्यास योग कहते हैं। उन्होंने बड़ी सरल भाषा में बहुत सहज सम्भाव्य उदाहरण से संसार में रहते हुए इसे साधित करने का उपचार प्रस्तुत किया है।

अभ्यासयोग: साधुसंग और प्रार्थना :—

संसार में रहकर किस तरह का अभ्यास करते हुए मनुष्य अपनी दयनीय अवस्था से बाहर निकल सकता है, ठाकुर कहते हैं, "उस देश (कामारपुकुर में) बढ़ई की औरत चिउड़ा बेचती हैं। वे कितनी ओर ध्यान देकर काम संभालती हैं, सुनो। एक तो ढेंकी चल रही है, एक हाथ से वह धान सरका रही है और एक हाथ से बच्चे को गोद में लेकर दूध पिला रही है। ऊपर से जो खरीददार आते हैं उनसे मोल तोल करती है। देखो लड़के को दूध पिलाना, ढेंकी चल रही है उसमें धान सरकाना और कूटे हुए धान निकालना, इधर खरीदार से बातचीत करना, ये सब एक साथ कर रही है। इसे ही अभ्यासयोग कहते। परन्तु उसका पन्द्रह आना मन ढेंकी पर लगा हुआ है क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि ढेंकी हाथ पर गिर जाय और एक आना मन लड़के को दूध पिलाने और खरीददार से बातचीत करने में है।"

इस प्रकार ठाकुर पन्द्रह आने मन ईश्वर पर लगाते हुए संसार करने को कहते हैं जो व्यवहार में संभव नहीं होता क्योंकि अपनी दुर्बलता के कारण अपने 'मैं' व 'मेरा' के चक्कर में पड़ा मानव इसकी धारण नहीं कर सकता वह दौड़कर ठाकुर के पास संशयग्रस्त होकर जाता है और पूछता है क्या मेरे लिए कोई उपचार है—ठाकुर तुरन्त कहते हैं—उपाय है—साधुसंग और प्रार्थना।" आगे कहते हैं—"वैद्य के पास गये बिना रोग ठीक नहीं होता। साधुसंग एक ही दिन करने से कुछ नहीं होता। सदा ही आवश्यक है। रोग लगा ही हैं साधुसंग से ईश्वर पर अनुराग होता है। उनसे प्रेम होता है। व्याकुल होकर प्रार्थना करना। सत् और असत् का विचार उनके पास रोना चाहिए। मन का सभी मैल धुल जाने पर उनका दर्शन होता है। चित्त शुद्ध होने पर ही उनकी प्राप्ति होती है।" इसके अलावा वे बीच-बीच में निर्जनवास का उपदेश करते हुए कम से कम तीन दिन एकान्तवास कर ईश्वर की चिन्ता करने को कहते हैं। ऐसे एकान्तवास के बाद जब संसार में आये तो अपनी अवस्था का ध्यान रखे और षड्रिपुओं से युद्ध करना जारी रखे। षड्रिपुओं से युद्ध और निर्जन में जाकर ईश्वर के पास समर्पण यही कुंजी है।

किले में रहकर युद्ध करना :—

संसार में रहते हुए ईश्वर पथ को साथ साथ पकड़े रहना अधिकांश लोगों की दृष्टि में असंगत है। पहले प्रकार के लोग संसार में हजारों झंझटों की बातें करते हैं और ईश्वर भजन उनके लिए ही मानते हैं जो संसार से अलग हो गये हैं। इनके इस मत को संसार से अलग हुए वे लोग बल देते हैं जो कहते हैं योग और भोग एक साथ कदापि रह ही नहीं सकते। मगर हमें उपर्युक्त दोनों मतों की सच्चाई ग्रहण करते हुए मध्य मार्ग का सहारा होना उपयुक्त जान पड़ता है। झंझटें तो संसार में सर्वत्र हैं यहाँ तक की गुफाओं व जंगलों में भी कोई निरापद स्थान नहीं है, चाहे संसार में रहे या बाहर कष्ट, झंझट तो सभी को सहनी ही होंगी और और योग व भोग में यदि मेल नहीं भी है तो भी जो भोग में पड़े हैं उनके लिये इन दोनों को कुछ दूर तक एक साथ रखने की इजाजत दी जानी चाहिए। क्या ईश्वर को निवेदित कर कोई अनन्त काल तक शराबी बना रह सकेगा? आगे चलकर तो इनमें से एक ने ही रहना है मगर हम यह कहते हुए कि भोगी के लिए योग को साथ में लेने की कोई गुंजाइश ही नहीं उसके प्रति घोर अन्याय करते हैं। उसे एक कदम तो बढ़ाने दें आगे जो भी हो कुछ न होने से कुछ होना क्या बेहतर नहीं? यही कुछ क्रान्ति भी

कर सकता है।

अब हम ठाकुर की बातों पर आ जाएँ तो हम पायेंगे श्रीरामकृष्ण देव ने एक बार भी नहीं कहा कि संसार में रहकर मनुष्य इस ओर नहीं जा सकता अपितु वे कहते हैं —"तुम लोग गृहस्थी में ही रहो न, इससे साधन भजन में और भी सुविधा है। मानो किले में से युद्ध करना है। मैदान में खड़े होकर लड़ने में असुविधायें हैं। विपत्ति देह पर गोले और गोलियाँ आकर गिरती हैं।" वे आगे कहते हैं, "जिनका भोग बाकी है वे गृहस्थी में रहकर ही ईश्वर का नाम लेंगे। हाथ में तेल मलकर कटहल छीलें। धनियों के घर में दासियाँ सब काम करती है परन्तु मन रहता है अपने निज के घर में। इसी का नाम निष्काम कर्म है। इसी का नाम है मन से त्याग।"

इस प्रकार गृहस्थ मानव के लिये पूरी संभावना है उसे आलसी, दुर्बल व भोगी लोगों के अपने प्रमाद को छिपाने के कुलकों से सावधान रहकर ठाकुर की वाणी के सत्य के अनुरूप किले में रह-कर युद्ध करना प्रारम्भ कर देना होगा। यदि वह युद्ध न करे तो यही किला मौत का कुआँ बन जायेगा यह निश्चित है। संसार तो सब कुछ हरण कर लेता है। भोग व स्वार्थ ही संसार का सच है। उसके साथ बहते जाने से मनुष्य निरंतर आयु, बल, वीर्य और पराक्रम से रिक्त होता चला जाता है अतः जो इस बहाव के साथ-साथ ईश्वर को जो कि मानव जीवन का वास्तविक लक्ष्य है [illegible]ामे रहता है ठाकुर उसे वीर पुरुष की संज्ञा देते [illegible] निश्चय ही उसपर उनका स्नेह व संरक्षण अधिक [illegible]ता है। वे कह रहे हैं—"जो संसार त्यागी हैं, [illegible] ईश्वर का नाम तो लेगा ही। उसको तो [illegible]र दूसरा काम ही नहीं। वह यदि ईश्वर का [illegible]न्तन करता है तो उसमें आश्चर्य की बात क्या [illegible] संसारी मनुष्य यदि ईश्वर का नाम जपे तो समझो उसमें बड़ी मर्दानगी है। संसार में रहकर जो साधना कर सकते हैं, वे यथार्थ में वीर साधक हैं।" मगर इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि जो अक्षम व दुर्बल हैं वे ईश्वर की ओर जाने की बात ही न सोचें। वास्तव में रोग सभी को है और सभी को रोग मुक्त होना है। तब क्या असाध्य रोग से ग्रसित व्यक्ति के उपचार की चेष्टा न की जाय जब तक सांस तब तक आस। असल में वीरता का अर्थ है विवेक और विचार से। जो स्वयं के भीतर चाहे जैसे भी विवेक व विचार जाग्रत कर सके वही वीर है। वह चाहे कितना अधिक रोग ग्रसित क्यों नहीं हो उसका उपचार अवश्य सम्भव है। विचार ही वह धुरी है जिसके चारों ओर धर्म जीवन का चक्र घूमता है और अन्ततः विवेक वैराग्य का जन्म होता है और मनुष्य समर्पण को प्रस्तुत होता है।

समर्पण अन्तिम अवस्था :—

संसार रूपी रोग की समझ के साथ मुक्ति के प्रयास करते हुए जप-तप, साधन भजन, साधुसंग निर्जनवास प्रार्थना आदि उपायों से भक्ति पथ में अग्रसर होते जब संसार पंक में निमग्न मानव यह देखता है कि उसके वश में कुछ नहीं है। उसका मैं पूरी तरह हार जाता है। वह अक्षम व असहाय हो जाता है तब उसे अपनी दयनीय अवस्था का भान होता है। जहाँ सम्पूर्ण पुरुषार्थ हार जाता है वहीं समर्पण आता है बन्दर के बच्चे की उछल-कूद वह बिल्ली के बच्चे की अवस्था में आने लगता है। अपने बाप को उँगली थमा देने और आँधी में जूठी पतल की भांति पड़े रहने की स्थिति को मनोनुकूल पाता हैं। यह समर्पण का प्रारम्भ है। इस अवस्था के लिए गीता शास्त्र के अन्त में भगवान् अर्जुन से सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर अपनी अनन्य शरण में चले आने को

कहते हैं और ठाकुर कहते हैं, "सब कुछ भगवान को समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर तकलीफ नहीं रह जायेगी। तुम देखोगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।"

ज्ञानभक्ति की प्राप्ति से संसार रूपी रोग पीड़ित नहीं कर सकेगा अगर मनुष्य का "अहँ" इसमें प्रबल बाधा बनकर खड़ा होजाता है। वह उसे अपने शरणांगत होने को बाध्य करता है। दोनों में से एक का चुनाव करना पड़ता है। मनुष्य उसी का चुनाव करता है जो उसकी इन्द्रियों का विषय है अर्थात् उसका "अहं" या में 'मेरा"। जहाँ यह अँह हार जाय वहीं समर्पण आता है। ठाकुर के परम अनुरागी भक्त गिरीशचन्द्र घोष से ठाकुर केवल स्मरण-भवन करते रहने को कहते हैं मगर गिरीश बाबू को अपने अव्यवस्थित जीवन पर पूरा नियंत्रण समाप्त होने के कारण यह सब करते रहने का साहस न हुआ। वे चुप रहे। तब ठाकुर ने उनके भीतर समर्पण का सूत्र पकड़ लिया और उन्हें अपना भार उन्हें सौंप देने (बकलमा देने) को कहा। गिरीश बाबू राजी हो गये उन्होंने इसे सरल समझा मगर यह [न समझा की यह बकलमा वह प्रेम का बंधन है वह समर्पण का सूत्र है जिसे एक बार गले में डालकर वे कभी भी इससे मुक्त नहीं हो सकेंगे। उनका "मैं" पूरी तरह श्रीठाकुर के श्रीचरणों में समर्पित हो गया और उनका जीवन आनन्द व मधुरता से भर गया। उन्हें श्रीरामकृष्ण की इस वाणी में सभी दीनहीन दुर्बल, पापी-तापी जीवों के लिये एकमात्र राह नजर आई जिसे वे ठाकुर का महावाक्य कहते हैं और इसी महाकाव्य के साथ श्रीगुरु की शरण एकमात्र भव रोगों की रामबाण ओषधि जानते हुए अपनी बात को विराम दे रहा हूँ। ठाकुर का महावाक्य "अपने मन की दुर्बलता को निष्कपट हृदय से ईश्वर को जताओ जितना हो सके, जताओ। वे बिन्दु को सिन्धु की तरह देखते हैं। तुम्हारी इस प्रार्थना को वे अवश्य पूर्ण करेंगे। तुम दुर्बल हो—यह वे जानते हैं। तुम्हारे एक बार शरणांगत होने पर वे तुम्हें नहीं तेजेंगे। वे शरणांगत को त्याग कभी नहीं करते। वे शरणागत दीनजनों के परित्राण-परायण है।" जय श्रीरामकृष्ण !

'इस संसार में सभी पागल हैं, कुछ स्वर्ग के पीछे पागल हैं, कुछ स्त्रियों के पीछे और कुछ भगवान् के पीछे। यदि मनुष्य के भाग्य में डूबना ही बदा है, तो गोबर के पोखरे में डूबने के स्थान पर क्षीरसागर में डूबना अधिक अच्छा है।' यह एक ऐसे भक्त का उत्तर है, जो पागल में आविष्ट था।

— स्वामी विवेकानन्द

धार को स्वीकार कर लो

—डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण (पटना)

मैं नहीं पावन शिला वह
तुम जिसे स्पर्श दे दो
हूँ सुदामा भी नहीं जो
सख्य प्रेम सहर्ष दे दो

मैं नहीं श्रद्धा, नहीं
पीयूष स्रोता सलिल सरिता
कर्मयाज्ञिक हूँ नहीं हूँ
प्रेरणा पावन सुचरिता

यूँ कहो मैं धूमलतिका
सी उपेक्षित नयन-पीड़ा
हे ! प्रभो मैं मंजु ममता
की गली भटकी सुधीरा

मन हुआ अवसन्न कुंठित
सहस अभिलाषा प्रगति से
तुषामय आलोक परिवर्तित
हुआ है क्षीण गति से

पल्लवित कुसुमाकलित
है वासना, विषदन्त गाड़े
शिथिल संवेदन हृदय का
लूट गयी मैं दिन दहाड़े

हूँ समस्त वसुन्धरा की
पातकी ऐसी अभागन
बन सकूँगी चेतना-चैतन्य
की जाग्रत पुजारिन ?

चिर निराशा घोर संकट
विद्ध करता प्राण व्याकुल
ज्योति-रेखा दूर तिमिराछन्न
पथ अवसन्न आकुल

संकुलित मन-प्राण लेकर
तुम कहो किस द्वार जाऊं !
यह विनश्वर वासना उपलब्धि
ले किस ठौर पाऊं !

मैं नहीं इस विजन पथ पर
बढ़ सकूँगी बिन सहारे
सतत् होते जा रहे क्षण
प्रेरणा के नखत सारे

एक तुम रंजित किरण जो
अनल पथ के पार चुपके
बैठ अविरत नियति का
यह खेल तकते रहे छुपके

कुछ करो ऐसा कि मैं बस
अग्निशाला से निकलकर
दूँ तुझे प्रतिदान मैं
नवनीत सी ऐसी पिघलकर

हृदय का राजस्व सुन्दर
छन्द की ऐसी सुगीता
सकल संचित स्नेह श्रद्धा
शान्त मन पावन पुनीता

तार 'वीणा' का करे झंकार
झंकृत भावना से
ज्योत्स्ना निर्झरी बन
उल्लसित पावन कामना से

स्नेह सीपी से मृदुल
मुक्ता विनिर्गत भाव कर दो
मील का पत्थर बने
वरदान, अभिनव भाव भर दो

हृदय के जलपात्र से यह मधुकिरण लो धार सुखकर
शब्द-सुषमा का बना यह माल्य अर्पण चरण तल पर

भारत परिक्रमा शताब्दी के अवसर पर

स्वामी विवेकानन्द की भारत परिक्रमा "कुछ उद्‌बोधक प्रसंग"

—डॉ० वी० टी० अडवानी

सचिव—रामकृष्ण इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कामठी

स्वामी विवेकानन्द ने उच्च आध्यात्मिक आदर्शों व धर्म समन्वय का संदेश दिया। स्वामी विवेकानन्द ने विश्व को स्फूर्ति दायक, शक्तिदायक विचार प्रदान किये। आध्यात्मिक उत्थान व धर्म समन्वय का संदेश उन्होंने शिकागों धर्म सभा में प्रसारित किये इस हेतु वे विश्ववंद्य युगाचार्य है। भारत से अमेरिका जाने से पहले उन्होंने सम्पूर्ण भारत की परिक्रमा की थी। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, नगर-नगर डगर-डगर भटके थे। झोपड़ियों में रहने वाले तथाकथित अछूतों के साथ, दलितों के साथ रहकर उनकी व्यथाओं का अनुभव किया। प्रबुद्ध वर्ग के साथ इनका मेल-जोल हुआ। उनकी सोयी हुई आत्मा को भी देखा। राजाओं महाराजाओं के साथ महल में वास किया और उन्हें सही अर्थ में प्रजापालक बनने का आह्वान भी किया। और अन्त में कन्याकुमारी की शिला पर बैठकर सम्पूर्ण भारत का चित्र जब वे स्मृति-पटल पर लाते हैं तो देश की अज्ञानता दरिद्रता, धर्मान्धता, अकर्मण्यता आदि से उनका हृदय चीत्कार उठता है। और इस व्यथित भारत माता हेतु कुछ करने के अदम्य उत्साह से एक विशेष तड़पन हृदय में लेते हुए वे प्रस्थान करते हैं अमेरिका की ओर। वहाँ शिकागो की धर्म सभा में भारत का आध्यात्मिक संदेश 'सर्व धर्म समभाव" शक्ति, और अभय का संदेश प्रसारित कर सम्पूर्ण मानव जाति को विशेषकर भारतवासियों को सदियों की निद्रा से जगाते हैं।

अतः ऐसा माना जाता है कि कलकत्ता के नरेन्द्र नाथ दत्त को विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द बनाने में भारत भ्रमण का महत योगदान है। यही सोचकर उनकी भारत परिक्रमा शताब्दी इस वर्ष १९९२-९३ सम्पूर्ण विश्व में मनायी जा रही है।

इस अवसर पर स्वामीजी के भ्रमणकाल १८९०-९३ के कुछ उद्‌वोधक प्रसंगों का यहाँ वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

वाराणसी की घटना– सामना करो

दुर्गा मंदिर से लौटते समय बंदरों का झुण्ड उनका पीछा करता है। वे भागते हैं। एक वृद्ध संन्यासी उन्हें बुलाते हुए कहते हैं—"रुको, हमेशा, पशु का सामना करो।" नरेन्द्र मुड़े, रुके—एकदम निर्भय; उस मुद्रा में देखकर—बन्दर भाग गये बाद में न्यूयार्क में इस घटना का उल्लेख करते हुए इसकी शिक्षा इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने दी—

प्रकृति का सामना करो, अज्ञान का सामना करो, माया का सामना करो—भागो कभी नहीं।

वृन्दावन की घटना—प्रभुकृपा की परीक्षा

श्रीगोवर्धन की परिक्रमा करते हुए वे प्रण कर

है कि बिना मांगे जो भोजन मिलेगा केवल वही खाएँगे। पहले ही दिन दोपहर तक ही कहीं भूख का अनुभव करते हैं; भूख-थकान से बेहाल स्वामीजी आगे बढ़ रहे थे कि अचानक सुनते हैं कोई उन्हें पीछे से पुकार रहा है वे उस ओर ध्यान नहीं देते है। नजदीक आते हुए वह व्यक्ति चिल्लाता है कि उनके लिए भोजन लाया है। नरेन प्रभु कृपा को परखने की ठान लेते हैं और वे तेज दौड़ते हैं। वह व्यक्ति भी उनका पीछा करता है व अन्ततः उन तक पहुँचकर आग्रह पूर्वक उनको भोजन कराता है। भोजन करा चुकने पर चुप-चाप चला जाता है। स्वामीजी अनुग्रहवश अश्रु-पूरित हो प्रभुकृपा से अभिभूत हो गये।

मेरठ की घटना—अध्ययन में एकाग्रता

स्वामीजी ने स्थानीय लायब्रेरी से सर जॉन लुब्बाक की पुस्तक बुलवाई। दूसरे दिन इस सूचना के साथ पुस्तक लौटा दी कि स्वामीजी ने पुस्तक पढ़ लीं। ग्रंथपाल को विश्वास न हुआ। स्वामीजी जब पुस्तकालय गये तो ग्रंथपाल ने आश्चर्य व्यक्त किया! स्वामीजी बोले—"महाशय, ये ग्रंथ मैंने पूरी तरह आत्मसात कर लिये है। संदेह हो तो इनमें से आप कुछ भी पूछ सकते हैं ग्रंथपाल ने अनेक प्रश्न पूछे व सही उत्तर पाये व विस्मित हो गये। पूछने पर स्वामीजी बोले "मैं कोई भी पुस्तक शब्दशः नहीं पढ़ता, मैं वाक्य के वाक्य, पैराग्राफ एक नजर में पढ़ लेता हूँ।

मौलवी साहब के घर भोजन

अलवार की घटना—सन्यासी की जात नहीं

मौलवी—"स्वामीजी, मेरी बहुत इच्छा है कि आप मेरे घर पर भोजन करें। मैं सारे घर को साफ कराऊँगा। ब्राह्मणों से सामग्री मंगवाकर, उन्हीं के बर्तनों में उनसे भोजन बनवाकर, उन्हीं के हाथों आपको खिलवाऊँगा। मैं बहुत दूर से केवल आपको मेरे घर में भोजन करा स्वयं का सुख पाना चाहता हूँ। यह सुन स्वामीजी मौलवी का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहते हैं, मौलवी साहब आप क्या कह रहे हैं? मैं एक संन्यासी हूँ। संन्यासी की कोई जात नहीं होती आप व्यर्थ ही दुःखी हो रहे हैं. मैं अवश्य आऊँगा व आपके घर में भोजन पाऊँगा, आप भी मेरे साथ भोजन करें।

अलवार में राजा मंगल सिंह के साथ स्वामीजी का रोचक वार्तालाप—मूर्तिपूजा का औचित्य

महाराज ने स्वामीजी से पूछा "स्वामी, मुझे मूर्ति पूजा में कोई विश्वास नहीं है। मैं अन्य लोगों की भांति लकड़ी, मिट्टी या धातु की पूजा नहीं कर सकता। तो क्या इसके कारण मुझे मरने के बाद बुरी गति मिलेगी?" स्वामीजी की दृष्टि अचानक महाराज की एक तस्वीर पर पड़ी, जो दीवार पर टँगी हुई थी। उनके इच्छा करने पर तसवीर को उतारकर उन्हें दे दिया गया। उसे हाथों में ले स्वामीजी ने पूछा "यह किसकी तसवीर है?" दीवान ने उत्तर दिया "हमारे महाराज की।" दूसरे ही क्षण वहाँ पर उपस्थित लोग भय से काँपने लगे, जब उन्होंने देखा कि स्वामीजी दीवान को उस तसवीर पर थूकने के लिए कह रहे हैं। दीवान को मानो काठ मार गया और लोगों की आँखें भयभीत हो कभी राजा से संन्यासी की ओर जाती, तो कभी संन्यासी से राजा की ओर। पर स्वामीजी लगातार जोर देते रहे, "इस पर थूकिये। मैं कहता हूँ इस पर थूकिये!" दीवान भय और आश्चर्य से चिल्ला उठे. "यह क्या स्वामीजी आप यह क्या कह रहे है? यह तो हमारे महाराजा की प्रतिकृति है। मैं इस पर कैसे थूक सकता हूँ?" स्वामीजी बोले "भले ही हो, पर इस चित्र में महाराज शरीर से तो विद्यमान है नहीं! यह तो मात्र कागज का टुकड़ा है। परन्तु फिर भी आप सब इस पर थूकने से इन्कार करते है क्योंकि आप

इस चित्र में महाराज के रूप की छाया देखते है। वास्तव में इस तसवीर पर थूकना आप अपने स्वामी, इन महाराज का अपमान समझते हैं।" वे महाराज की ओर मुड़े और बोले, "देखिये महाराज, इस पर थूकने के लिये कोई तैयार नहीं। क्योंकि इसमें वे आपको ही देखते है। इसी प्रकार भक्त मूर्ति में अपने इष्ट को देखता है वह उसकी पूजा अर्चना करता है, वह मिट्टी या पत्थर या धातु को नहीं पूजता है, ईश्वर को ही पूजता है। महाराज बड़े ध्यानपूर्वक स्वामीजी की बातों को सुन रहे थे। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, "स्वामीजी ! मैं अवश्य यह स्वीकार करता हूँ कि आज तक मैं ऐसे किसी भी व्यक्ति से नहीं मिला, जो पत्थर लकड़ी या धातु की पूजा करता हो। इससे पूर्व मैं उसका अर्थ समझ ही नहीं पाया था। आपने मूर्ति पूजा के संबंध में जो विचार प्रकट किये, उनसे मेरी आँखें खुल गयी।

जयपुर की घटना—गंभीरता व उत्सुकता से ज्ञान प्राप्त

संस्कृत के विद्वान शिक्षक को पाकर संस्कृत व्याकरण अध्ययन करने की इच्छा हुई। तीन दिन तक कुछ उन्नति के लक्षण दिखाई नहीं दिये। शिक्षक ने निराश होकर अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। अब स्वामीजी ने दृढ़ निश्चय कर स्वयं सूत्रों का अध्ययन शुरू किया। मात्र तीन घंटों में उन्होंने उन सूत्रों को आत्मसात कर लिया जो तीन दिन में सम्भव न हुआ था। पंडितजी के पास जाकर उन्होंने सूत्रों का भाष्य समझाकर बताया। पंडितजी ने आश्चर्य से पूछा "स्वामीजी ! यह कैसे सम्भव हुआ।" स्वामीजी ने कहा यदि मन गभीरता से उत्सुक हो तो सब कुछ उपलब्ध हो सकता है—पहाड़ भी अणुकण में ढह सकते है।

माऊँट आबू में—जात-पात, छूत-छात से परे

माऊँट आबू में स्वामीजी एक गुफा में रहते थे। बरसात में पानी अंदर चले जाता था। एक मुसलमान वकील उनकी ओर आकर्षित हुआ। और उनके पास आने जाने लगा। एक दिन वकील ने स्वामीजी से कहा - मेरे लिए कुछ सेवा हो तो बताइये। स्वामीजी ने कहा—इस गुफा को दरवाजे की जरुरत है, यदि आप मेहरबानी करें तो इसका दरवाजा बना दीजिये। वकील ने अत्यंत नम्र होकर कहा, यह गुफा तो बहुत खराब है, रहने योग्य नहीं है। मेरा बंगला बहुत बड़ा है और में अकेले रहता हूँ। आप वहाँ रहने की कृपा करें तो मैं धन्य हो जाऊँगा। मैं मुसलमान हूँ पर मैं आपके भोजन की अलग व्यवस्था अलग कर दूँगा। मुसलमान वकील की बात सुनकर स्वामीजी कहने लगे—इसकी भोजन की अलग व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं। चलिये अभी मैं आपके साथ आपके बंगले में निवास हेतु चले चलता हूँ। वकील साहब अत्यंत गद्‌गद् हो गये और स्वामीजी को अपने बंगले ले गये।

कुछ दिन के बाद खेतरी के महाराजा के निजी सचिव जगमोहन लाल वकील साहब के निमंत्रण पर स्वामीजी से मिलने आये और कहने लगे—'आप एक हिन्दू संन्यासी है, आप एक मुसलमान के पास कैसे रह रहे हैं। आपका भोजन अनेक बार उनके द्वारा छुआ जाता होगा। यह सुनकर स्वामीजी अत्यंत क्रोधित हुए कहने लगे—महाशय मैं संन्यासी हूँ आपकी सभी परम्पराओं के परे हूँ। मैं एक तथाकथित अछूत के साथ भी भोजन कर सकता हूँ - मैं सर्वत्र ब्रह्म देखता हूँ, छोटे से छोटे प्राणी में भी। मेरे लिए ऊँच नीच कुछ नहीं है। शिवः शिव।"

इस प्रकार स्वामीजी ने अपनी परिक्रमा द्वारा मानवता के उच्चतम मूल्यों का भाष्य प्रस्तुत किया और हम सबको जीवन की सच्ची राह बतलायी।

स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

—श्री सतीश चन्द्र मुखोपाध्याय

(डान सोसायटी के प्रतिष्ठाता और प्राण पुरुष, स्वामीजी के सहपाठी)

सन् १८७९ ईसवी। सोलह वर्षीय युवक नरेन्द्रनाथ को प्रेसिडेंसी कालेज की बूथ साहब की गणित की क्लास में सर्वप्रथम देखा था। परिचय कराने वाले थे मेरे मित्र शशि भूषण वसु जो उसी कॉलेज के छात्र थे तथा गणित में बहुत अच्छे थे और अध्यापक महोदय के प्रियपात्र थे। इसके अतिरिक्त शशि संगीत का अभ्यास भी करते थे, इसलिए नरेन्द्र के साथ विशेष सौहार्द था। बूथ साहब उस समय के केम्ब्रिज के रेंगलर अर्थात गणित की परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण गणित विशारद थे। वे अन्य कॉलेज के विद्यार्थियों को भी अपनी क्लास में गणित सिखाते थे। इसीलिये मेट्रोपोलिटन कॉलेज की एफ. ए. का छात्र होते हुए भी प्रतिदिन वहाँ मेरा दोपहर को दो बजे के बाद जाना होता था। नरेन्द्र प्रथम वर्ष में प्रेसिडेंसी कॉलेज में पढ़ते थे तथा द्वितीय वर्ष में जनरल एसेम्बलीज् में (जो अब स्कारिश चर्च कॉलेज है) में चले जाने पर भी बूथ की क्लास में आते थे। इसके अतिरिक्त नरेन्द्र और शशि (शशिभूषण बसु) हेंरय स्कूल में एक क्लास में पढ़े थे।

शशि के भवानीपुर स्थित निवास स्थान पर नरेन्द्र और मैं जाया करते थे। शशि के पिता हमसे स्नेह करते थे। कॉलेज एरिया में तीनों मिलकर गोलदीघि के निकट रात्रि नौ दस बजे तक बातचीत-गानादि करते थे। मैं गाना न जानते हुए भी संगीत प्रिय था। क्रमशः नरेन्द्र ब्राह्म समाज के द्वारा प्रभावित हुए और उस समय मेरा स्वदेश सेवा की ओर झुकाव होने के कारण उनके साथ सम्पर्क नहीं रहा।

परमहंस देव के तिरोधान के दो तीन वर्ष बाद मैंने वाराह नगर मठ में यातायात आरम्भ किया। उस समय स्वामीजी परिव्राजक थे, वहाँ नहीं थे। वहा साधुओं के साथ यथासाध्य जल भरना, कमरों को झाड़ना-बुहारना, तथा अन्यान्य कार्य करके तृप्ति प्राप्त करता था। बाद में महेन्द्र, मास्टर महाशय और दक्ष महाराज मुझे प्रभु पाद विजय कृष्ण गोस्वामी के पास ले गये। गोस्वामीजी ने मेरे मित्र मार्गगामी मन को धर्म-मार्ग की ओर आकृष्ट किया। इसके बाद सीधे काशीपुर के एक उद्यान भवन में (गोपाल लाल शील के उद्यान भवन में) स्वामीजी से साक्षात्कार हुआ। तब उनका बिलकुल भिन्न रूप था। अब वे विदेश से प्रत्यागमन करने वाले जगद्वरेण्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द थे। एक वृहत् सभाकक्ष, जिसमें लगभग एक सौ व्यक्ति उपस्थित थे, जिनमें पाश्चात्य भक्त भी थे। स्वामीजी के साथ सब की धर्मालोचना हो रही थी। मुझे प्रवेश करते देखते ही स्वामीजी ने अपनी कुर्सी त्याग कर सीधे दरवाजे के पास आकर मेरा गाढ आलिंगन किया। हाथ पकड़कर खींचते हुए ले जाकर एक कोच (सोफे) पर अपने अति निकट बिठाया और वही पहले वाले नरेन्द्रनाथ की तरह (बीच की अवधि में जैसे कुछ भी घटित नहीं हुआ हो घनिष्ठ बन्धुत्व के साथ बालक की तरह वार्तालाप करने लगे।

इतने लोगों के बीच मुझे उनके प्रति संकोच प्रदर्शित करते देख स्वामीजी ने अतिसहज भाव से कहा : कोई क्या सोचेगा ? उसकी चिन्ता मत करो। बाद में मेरे परिचित एक मेधावी छात्र के

साथ परिचय करवाने की इच्छा व्यक्त करने पर, (वह छात्र अब एक प्रसिद्ध अवसर प्राप्त न्यायाधीश है) स्वामीजी ने अम्लान-वदन हँसते हुए कहा : Is he a fanatic ?" क्या वह कट्टर है ? मैंने कहा, "No" (नहीं) इस पर उन्होंने उत्तर दिया "Then I have no need of him—तब उसकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं। फेनेटिक शब्द का उपयोग, तेजस्वी धर्म तथा देश के लिए सर्वस्व का बलिदान देने के लिए यह युवक तत्पर है या नहीं, इस गम्भीर अर्थ में स्वामीजी ने व्यवहार किया था। स्वामीजी ने देश के कार्य के लिए मुझे अमेरिका, जापान, भेजने का प्रस्ताव रखा था, किन्तु मेरी अनिच्छा के कारण यह संभव नहीं हो सका था[२]।

टिप्पणियाँ (1) नरेन्द्रनाथ के हेयर स्कूल में अध्ययन की वात उनकी जीवनी में नहीं पायी जाती। तथापि इसकी सम्भावना है। एक बार मेट्रोपोलिटन स्कूल के बुरे स्वभाव वाले मास्टर के चांटे के आघात और कान खींचने के कारण बहुत खून निकलने पर उन्हें अध्यक्ष श्री विद्यासागर महाशय को स्पष्ट कहा था, "महाशय," आपके स्कूल में मैं नहीं पढ़ूँगा। "यह सम्भव हैं कि नाराज होकर कुछ दिनों के लिए पढ़ाई का स्कूल छोड़कर दूसरे मुहल्ले में हेयर स्कूल में रहें होगें।" (स्वामी निर्लिपानन्द का संयोजन)

(2) "लईट आफ द ईस्ट" नामक अंग्रेजी पत्रिका जनवरी १८९४ के अंक में सतीशचन्द्र का शिकागो धर्म महासभा विषयक एक सुदीर्घ लेख प्रकाशित हुआ था। लेख "जिरो" छ्द्म नाम में लिखा गया था। विख्यात विवेकानन्द गवेषणाकार शंकरी प्रसाद बसु का अनुमान है कि छ्द्म नाम पत्रिका के सम्पादक सतीशचन्द्र का ही है। पूर्व परिचय के सूत्र से सतीशचन्द्र ने वहाँ (मूल लेख हमने नहीं देखा है) जो लिखा है, उसके अंश विशेष का अनुवाद शंकरी प्रसाद ने इस प्रकार किया है। विवेकानन्द और समकालीन भारतवर्ष प्रथम खण्ड १९७५ पृ० ७१ :

स्वामी विवेकानन्द को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ। उनके व्यक्तिगत चरित्र, पवित्रता और प्रतिभा के सम्बन्ध में मेरी उच्चतम धारणा व श्रद्धा है। अनेक प्रकार से वे महान रामकृष्ण परमहंस के योग्य शिष्य हैं।

"मैं उन्हें प्रेम करता हूँ क्योंकि वे सभी मानवों के प्रेम के योग्य पात्र हैं। वे एक दीर्घ प्रशस्त आकर्षक पुरुष हैं, मनीषा से पूर्ण उनका अपूर्व सुन्दर मुखमण्डल है, बृहत् उज्जवल नेत्र हैं जो प्रसन्न, स्थिर, प्रेम व स्नेह से तुम्हारी ओर ताकते हैं। बुद्धि की प्रभा से झलमल करते अवयवों वाले ये विवेकानन्द सचमुच प्रेम करने योग्य मनुष्य हैं। आधुनिक इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए वे एक निर्धारित पुरुष हैं। उनका बृहत् उदार कोमल हृदय, उनकी दृढ़ता, उनका आत्मत्याग, सभी मनुष्यों के प्रति प्रेम, सर्वोपरि उनकी पवित्रता तथा अति उच्च स्तर की बुद्धि शक्ति—इन सभी के द्वारा वे सहस्त्र मनुष्यों के समूह में भी पहचाने जा सकते हैं। तुम्हारे प्रति निबद्ध उनके प्रदिप्त नयनों की ओर यदि तुम देखो, तो उनमें तुम संकल्पशक्ति का एक ज्वालामुखी पाओगे, जो ठीक मार्ग ग्रहण करने पर मातृभूमि पर एक अलौकिक चमत्कार उपस्थित कर देगा।... और मैं, जो आज उनके विषय में समालोचना करने बैठा हूँ, वही मैं संभवतः उनके साथ थोड़ी सी बातचीत करने का अवसर पाकर ही अपने को धन्य समझूँगा।

शंकर चरित

—स्वप्नगोपाल भट्टाचार्य
अनुवादकः स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मिशन, रायपुर (म०प्र०)

तृतीय अध्याय

मंडन-विजय

आचार्य शंकर कुमारिल के साथ विचार करने अपने शिष्यों के साथ प्रयाग पहुँचे। वहाँ उन्हें पता चला कि कुमारिल भट्ट गुरुहत्या के पाप का प्रायश्चित्त करने हेतु तुषानल में प्रविष्ट होकर प्राणविसर्जन का संकल्प कर चुके हैं। आचार्य देव ने अविलम्ब वहाँ जाकर देखा कि वे तुष के एक ज्वलन्त स्तूप पर स्थिर भाव से बैठे हैं। थोड़ी देर बाद ही उनका शरीर दग्ध होनेवाला था। प्रभाकर आदि शिष्यगण यह भीषण दृश्य देखकर अश्रुपात कर रहे थे।

शंकर का परिचय पाकर भट्ट को आनन्द हुआ। शंकर ने उनके साथ विचार करने की अपनी अभिलाषा व्यक्त की। परन्तु कुमारिल अपने प्रायश्चित का संकल्प तोड़ने को सहमत नहीं हुए। उन्होंने शंकर को बताया कि उनके शिष्य मण्डन मिश्र उनसे भी अधिक धीमान हैं और उन्हें परास्त कर पाने से ही कुमारिल को परास्त करना हो जाएगा। शंकर ने पूछा, "हम दोनों के शास्त्रार्थ के बीच मध्यस्थ होने के योग्य व्यक्ति कहाँ मिलेगा?" कुमारिल ने कहा, "मण्डन की पत्नी उभयभारती साक्षात् सरस्वती के तुल्य है, उसे ही मध्यस्थ मानने से हो जाएगा।"

कुमारिल के निर्देशानुसार मण्डन के साथ विचार करने को आचार्यदेव माहिष्मती नगरी में जा पहुँचे। मण्डन के घर में इतनी वेद-चर्चा होती थी कि उनके दास-दासियाँ तक इन्हीं विषय पर बातें करते थे; यहाँ तक कि उनके घर में पले तोते भी वेद मन्त्रों की आवृत्ति करते थे। मण्डन के आवास पर पहुँचकर आचार्य ने देखा कि द्वार बन्द है। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे अपने पितरों का श्राद्ध करने में व्यस्त हैं और इस शुभकार्य के दौरान कुछ अमंगल सूचक न दिख जाय, इस भय से उन्होंने द्वार बन्द कर रखे हैं। संन्यासी वेद-विधि, शिखा-सूत्र त्यागकर अपना श्राद्ध करके गृहत्याग करते हैं; अतः वे संन्यासी को शव के समान अमंगल-सूचक मानते थे।

शंकर अपनी योगशक्ति के द्वारा आकाश मार्ग से मण्डन के ठीक सामने ही जा पहुँचे। द्वार बन्द होने के बावजूद, इस प्रकार सहसा असम्भावित रूप से एक संन्यासी को उपस्थित देखकर मण्डन बड़े नाराज हुए। तब उन दोनों के बीच जो वार्तालाप हुई, वह बड़ी रोचक है।

मण्डन—कहाँ से, मुण्डी? (हे मुण्डितमस्तक, संन्यासी, कहाँ से आये हो?)

शंकर—गले से। (मैं गले से सिर तक मुड़ाकर मुण्डित हुआ हूँ।)

मण्डन—शिखा-सूत्र का भार सहन नहीं हुआ, परन्तु गधे के समान कन्था ढो रहे हो।

शंकर—रमणी पोषण के भारवाही गधों का भार हलका करने के लिए ही मैं कन्था का वहन कर रहा हूँ। वेद का आदेश है, 'वैराग्य होते ही संन्यास ग्रहण करना', 'शिखा-सूत्र का त्याग

करना', 'अन्य आश्रम का परित्याग कर संन्यास लेकर आत्मतत्त्व का श्रवण करना।'

मण्डन—पत्नीरक्षण में असमर्थ होकर तुमने गृहत्याग किया था। अब शिष्यों और पुस्तकों का भार ढोते हुए खूब ब्रह्मनिष्ठा दिखा रहे हो।

शंकर—आलस्यवशतः गुरु की सेवा त्यागकर नारी-सेवा का अवलम्बन करने से तुम्हारी कर्मनिष्ठा का अच्छा प्रमाण मिल रहा है।

मण्डन—धिक् कृतघ्न ! मूर्ख, नारी के गर्भ में वास कर, नारी के यत्न से लालित-पालित होकर बारम्बार तुम नारी-निन्दा कर रहे हो ?

शंकर—नारीगर्भ में वास और उसका स्तनपान कर अब तुम नारी के साथ पशुवत् आचरण कर रहे हो। तुम कृतघ्न मूर्ख हो या मैं कृतघ्न मूर्ख हूँ ?

मण्डन—मूर्ख, द्विजाति होकर तुमने अग्नि-उपासना का त्याग किया है। तुम इन्द्रहत्याकारी महापापी हो।

शंकर—तुम आत्मज्ञान त्यागकर आयुक्षय कर रहे हो। तुम आत्महत्याकारी महापापी हो।

मण्डन—तुमने चोर के समान मेरे घर में प्रवेश किया है। तुम चोर हो।

शंकर—तुम गृहस्थ हो, तुम्हारे अन्न में संन्यासी का हिस्सा है। संन्यासी का भाग चुराने के लिए तुमने द्वार बन्द कर रखे थे, तुम चोर हो।

मण्डन—कहाँ तुम्हारे जैसे मूर्ख संन्यासी और कहाँ ब्रह्मज्ञान ! कहां संन्यास, और कहाँ कलिकाल ! दूसरों के अन्न से जिह्वातृप्ति के लिए तुम यति के वेश में घूम रहे हो।

शंकर—कहाँ स्वर्ग, और कहाँ तुम्हारे समान विषयासक्त लोग ! कहाँ वैदिक यागयज्ञ और कहाँ कलिकाल ! इन्द्रियसुख की लालसा में तुम गृहस्थ सजकर ढोंग कर रहे हो।

मंडन ने दो महापंडित ब्राह्मणों को पौरोहित्य के लिए निमंत्रित करके बुलाया था। वे बड़े ध्यानपूर्वक यह तर्क-वितर्क सुन रहे थे। उन्होंने देखा कि मंडन क्रुद्ध होकर बोल रहे हैं, परन्तु संन्यासी प्रशान्त चित्त से सरस उत्तर देकर उन्हें निरस्त करते जा रहे हैं और उनके वाक्य युक्तिपूर्ण और वेदसम्मत हैं। उन्होंने यह सोचकर कि ये साधारण मानव नहीं हैं, मंडन को क्रोध त्यागने का उपदेश देकर कहने लगे. "ये वेदज्ञ, जितेन्द्रिय यति हैं। आज श्राद्ध के दिन कहाँ तो इन्हें सादर आमंत्रित करोगे, पर तुम इनके प्रति कठोर वाणी का प्रयोग कर रहे हो। आज विनम्रतापूर्वक इन्हें निमंत्रित करना ही तुम्हरा कर्तव्य है।" पुरोहितों की बात सुनकर मंडन शान्त हुए और आज अपने घर शिक्षा ग्रहण करने के लिए यथारीति शंकर से अनुरोध करने लगे। शंकर ने कहा; "मैं तर्क की भिक्षा के लिए आपके पास आया हूँ। अन्य किसी भिक्षा की मुझे आवश्यकता नहीं। इस शर्त के साथ कि 'जो पराजित होगा, वह विजेता का शिष्यत्व तथा आश्रम स्वीकार करेगा,' मैं आपके साथ शास्त्र-चर्चा करना चाहता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि परास्त होने पर मैं संन्यास-आश्रम त्याग दूँगा और पुनः शिखा-सूत्र ग्रहणकर आपका शिष्य बन जाऊँगा। आप पराजित हो जाने पर शिष्यत्व स्वीकार कर संन्यासी बनेंगे—इसी शर्त पर आप मुझे तर्क की भिक्षा दीजिए। और नहीं तो मेरे सामने हार स्वीकार कर मेरा मत ग्रहण कीजिए।"

तरुण संन्यासी के मुख से ऐसी दम्भपूर्ण उक्तियाँ सुनकर मंडन पहले तो थोड़ विस्मित रह गये। वे भारतजयी कुमारिल के प्रधान शिष्य थे; उनके सम्मुख वेदविद्या के बारे में इस प्रकार दम्भ दिखा सकने वाला कोई विद्यमान होगा, ऐसी उन्हें कल्पना तक न थी। और तिस पर भी एक बालक तर्कयुद्ध में उनका आह्वान करे! परन्तु

उस बालक के मुखमंडल पर एक ऐसी असाधारण प्रतिभा दीप्त हो रही थी कि उसकी बातों को बेकार कहकर उड़ाया भी नहीं जा सकता था। और महाज्ञानी पुरोहितों ने भी इसे वेदज्ञ के रूप में स्वीकार कर लिया है। मन ही मन यही सब बातें सोचकर मंडन ने बड़े दम्भ के साथ शंकर के प्रस्ताव के अनुसार तर्क करने में अपनी सहमति दे दी। उन्होंने पुरोहितों से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया, परन्तु वे लोग इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए बोले कि मंडन की पत्नी उभयभारती ही इस कार्य के लिए उपयुक्त है। कुमारिल ने भी पहले ही शंकर को उभयभारती के बारे में बता दिया था। अतः दोनों पक्षों ने उभयभारती को ही मध्यस्थ स्वीकार कर लिया। तय हुआ कि अगले दिन प्रातःकाल तर्क आरम्भ होगा।

उभयभारती बड़े धर्मसंकट में पड़ीं। मंडन के पक्ष में मत देने पर लोग स्वाभाविक रूप से ही कहेंगे कि उसने अपने पति के साथ पक्षपात किया है; फिर पति की पराजय भी वे किस मुँह से घोषित करेंगी? इसी प्रकार सोचते-सोचते उन्होंने एक उपाय ढूँढ निकाला—वे प्रतिदिन दोनों के गले में फूलों की एक-एक माला पहना देंगी; जो भी अपने पक्ष की दुर्बलता समझकर परेशान व उद्विग्न होगा, अवश्य ही उनके शरीर का ताप बढ़ेगा जिससे उसके गले की माला पहले मुरझाने लगेगी और इस प्रकार अपने आप ही जय-पराजय का निर्णय हो जाएगा।

अगले दिन प्रातःकाल चर्चा आरम्भ हुई। उभयभारती ने दोनों के गले में मालाएँ पहना दी। शंकर का मत था, "एक ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है; माया के भीतर से उसी को 'नाना' रूपों में देखते हैं; ब्रह्म के बारे में सुनते-सुनते और चिन्तन करते-करते जब भ्रम दूर हो जाएगा, तब बोध होगा कि एकमात्र ब्रह्म का ही अस्तित्व है, और कुछ भी नहीं है—इसी ज्ञान से जीव की मुक्ति होती है और यही सम्पूर्ण वेद का तात्पर्य है।"

मंडन के मतानुसार समग्र वेद का तात्पर्य था—"वैदिक मन्त्रों के द्वारा यागयज्ञ करके स्वर्ग-प्राप्ति को ही जीव की मुक्ति कहते हैं; वेदविधि के अनुसार कर्म करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य है।" अब मुक्ति तथा वेद-वाक्य के माध्यम से एक-दूसरे के मत का खंडन करके अपने मत की स्थापना करनी होगी। दोनों ने ही अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर अखंडनीय युक्तिजाल के द्वारा प्रतिपक्ष के मत को आवृत्त कर दिया; फिर दोनों ने चरम युक्तिपूर्ण हेतु दिखाते हुए एक-दूसरे के मत को छिन्नकर अपने मत का उत्कर्ष प्रदर्शित करने लगे। चारों ओर से सैकड़ों पंडित आ जुटे और इस अपूर्व तर्कयुद्ध को सुन-सुन कर मुग्ध हो गये। इसी प्रकार सोलह दिन बीते। मंडन ने देखा कि उनके पक्ष की युक्तियाँ क्रमशः क्षीण होती जा रही हैं। सतरहवें दिन उनके पास कहने को कुछ भी नहीं बचा। लज्जा और क्षोभ से उनके चेहरे का रंग उड़ गया, शरीर तप्त हो गया और उनके गले की माला मुरझा गयी। बाह्य लक्षण देखकर ही जय-पराजय के विषय में सन्देह नहीं रहा। पंडितगण इस सोलह वर्ष के बालक की मेधाशक्ति पर चमत्कृत रह गये और मंडन पर इसका परिणाम देखने को उत्सुक हुए।

अब अपनी पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार मंडन को संन्यास लेना होगा। यहाँ पर उभयभारती ने एक आपत्ति रखी। उन्होंने कहा, "नारी पुरुष की अर्धांगिनी होती है। आपने मेरे पति को परास्त किया है पर मुझे नहीं कर सके हैं। अतः आपकी विजय अभी तक पूरी नहीं हुई है। अब मैं पूर्व पक्ष का अवलम्बन करती हूँ, आप मेरे साथ विचार करें।"—यह कहकर उन्होंने स्त्री-स्वभाव के बारे में कुछ प्रश्न किये।

आचार्य ने बचपन से ही संन्यास ग्रहण कर लिया था। नारी-स्वभाव के बारे में उन्हें बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था। संन्यासी के लिए नारी स्वभाव के बारे में पढ़ना अथवा चर्चा करना पूर्णतः निषिद्ध है। अतः इस विषय के प्रश्नों को उत्तर दे पाना उनके लिए असम्भव था। परन्तु जिस महान् कार्य में वे लगे हुए थे, उसमें मंडन मिश्र के समान व्यक्ति की सहायता विशेष प्रयोजनीय थी, और इस कार्य के प्रारम्भ में ही विफलता आने देना उचित न था। अतएव किसी-न-किसी उपाय से उभयभारती को हराना आवश्यक समझकर शंकर ने उनसे एक महीने का समय मांगा।

परकाया-प्रवेश

आचार्य ने निश्चित किया कि वे किसी गृहस्थ के शरीर में प्रविष्ट होकर उभयभारती के प्रश्न का उत्तर लिख डालेंगे। इस उद्देश्य से आकाश पथ से ऊपर उड़कर उयुक्त शरीर की खोज करते हुए उन्होंने देखा कि अमरुक नामक राजा शिकार करने जाकर सहसा मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं और उनके सम्बन्धी मृतदेह के चारों ओर बैठ रुदन कर रहे हैं। अपने देवकार्य को सम्पन्न करने के लिए इन राजा के देह में प्रवेश करना आवश्यक समझकर शंकर अविलम्ब धरती पर उतर आये। वे अपने शिष्यों को लेकर एक अत्यन्त निर्जन गिरि-गुफा में गये और अपने शिष्यों को यह समझाने के बाद कि उनके शरीर त्यागकर राजा की काया में प्रविष्ट होने पर उनके शरीर की कैसी सावधानी तथा यत्नपूर्वक रक्षा करनी होगी, वे समाधिमग्न हो गये। शिष्यगण अतीव सावधानी के साथ अपने गुरु की देह रक्षा में लग गये।

राजा की देह में शंकर के प्रविष्ट हो जाने पर धीरे-धीरे उसमें जीवन के लक्षण प्रकट होने लगे। उनके सम्बन्धी आशावान होकर उनकी सुश्रूषा करने लगे। देखते ही देखते नींद से उठे के समान राजा ने आँखें खोल दीं। राजा के जीवित हो उठने पर उनके सम्बन्धी, मंत्री, सेनापति आदि अतीव उल्लास के साथ उन्हें राजधानी लौटा लाये।

सर्व-कामनाहीन परमत्यागी शंकराचार्य अब राजा हो गये। कुछ दिनों के भीतर ही उनकी विचारशक्ति, पांडित्य और गम्भीरता देखकर मंत्रीगण बड़े आश्चर्यचकित हुए। राजा के संबंधी उनके पहले के स्वभाव तथा व्यवहार में आगत भारी परिवर्तन देखकर बड़े चिन्तित हो उठे। उन्हें समझते देर न लगी कि किसी योगी ने किसी विशेष हेतु से राजा के शरीर में प्रवेश किया है।

मंत्रियों ने आपस में सलाह करके निश्चित किया कि यदि योगी ने अपनी पूर्वदेह कहीं सुरक्षित रखी हो तो उसे ढूँढ़कर नष्ट कर देना होगा। तब योगी काफी काल तक राजा की देह में रहने को बाध्य हो जायेंगे और इससे राज्य का परम मंगल होगा। अतः उन लोगों ने अत्यन्त गोपनीयतापूर्वक राजा से छिपाकर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुत से लोगों को लगा दिया।

एक महीना पूरा होने को आ गया और तब भी गुरुदेव को अपने शरीर में लौटते न देखकर शिष्यगण बड़े चिन्तित हुए। इसके पहले कभी कोई योगी एक राजा के शरीर में प्रविष्ट होकर भोगोन्मत्त हो गये थे। तब एक शिष्य ने बड़ा कष्ट उठाकर उनका बोध जाग्रत किया था। फिर कहीं उसी घटना की पुनरावृत्ति न हो जाय, यह सोचकर पद्मपाद अपने कुछ सुकण्ठ गुरुभाइयों के साथ संगीतज्ञों का वेष बनाया और राजा अमरुक की सभा में गये। वहाँ वे लोग संस्कृत में वैराग्यपूर्ण भजन गाकर राजा की पूर्वस्मृति को जगाने का प्रयास करने लगे। शंकर अपने शिष्यों को पहचान गये और सद्यः समाप्त स्त्रीचरित्र

सम्बन्धी ग्रन्थ को पद्मपाद के हाथ में देते हुए बोले, "मैं शीघ्र ही आ रहा हूँ।"

राजा के भृत्यों को खोजते-खोजते गुफा में सुरक्षित रखे शंकर के शरीर का पता चला। उन लोगों ने शिष्यों से शरीर छीन लिया और उसे जला डालने को चिता सजाकर उसमें आग भी लगा दी। ठीक उसी क्षण शंकर ने भी राजा का देह छोड़कर अपने शरीर में प्रवेश किया। योगी को सहसा हिलते-डुलते देख भृत्यगण भाग खड़े हुए। शंकर चिता से उठकर अपने शिष्यों से आ मिले।

अपने शिष्यों के साथ माहिष्मती नगरी को लौटकर आचार्यदेव ने देखा कि मंडन को वैराग्य हो गया है और वे ज्ञान के लिए व्याकुल हैं। उभयभारती आचार्यदेव के ग्रन्थ में अपने प्रश्नों को उत्तर पाकर सन्तुष्ट हुईं और पति का सन्यास निश्चित जानकर समाधि के द्वारा उन्होंने देहत्याग कर दिया। वैदिक प्रणाली के अनुसार मंडन अपना श्राद्ध, शिखासूत्र त्याग, मस्तक मुंडन, गेरुआ-वस्त्र धारण तथा विश्वरूप नाम त्यागकर सुरेश्वर के नाम से विख्यात हुए।

★

देवलोक

—स्वामी अपूर्वानन्द

अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

महापुरुष दर्शन

कुछ समय बाद दालान से उतर कर एक साधु से महापुरुष महाराज के दर्शन कराने की प्रार्थना करने पर वे मुझे पास के दालान में ऊपर दो तला पर ऊपर महापुरुष महाराज के पास ले गये। सीढ़ी से ऊपर जाने पर दूर से दिव्य कांति शांत दर्शन एक प्रवीण सन्यासी को देख कर मन ने ही कह दिया, ये ही मेरे स्वप्न संन्यासी है। उसके पश्चात् मैंने महापुरुष महाराज के घर में प्रवेश किया। वे कुर्सी पर बैठे हुए थे। उन्होंने प्रेम से मेरी तरफ देखा। कृपा और करुणा मानों उनकी आंखों से बरस रही थी। मैंने उनको उनका पत्र दिखाया तो वे प्रसन्न हुए। मैंने अभिभूत होकर उनके चरणों में प्रणाम किया। कपड़े की चप्पल पहने हुए उनके चरणों में मैंने आत्म निवेदन किया। और सिर उठाकर हाथ जोड़ कर उनसे दीक्षा के लिये प्रार्थना की और आशीर्वाद देने के लिये कहा। उनके पास में एक स्टूल पर रखी एक छोटी-सी तश्तरी में रखे हुए एक छोटे से संदेश को मेरे हाथ में दिया और मुझे ठाकुर का प्रसाद खाने के लिये कहा। अपने दोनों हाथों को मेरे सिर पर रख कर खूब आशीर्वाद दिया। उनके शक्तिपूर्ण स्पर्श से मेरे मन-प्राण एक अनिर्वचनीय आनन्द से भर गये। सारा शरीर कांपने लगा, मैं आविष्ट की तरह हो गया—अपनी इच्छा के विरुद्ध भी रोना आया। व्याकुल हो कर मैं रोने लगा। उन्होंने करुणा तथा स्नेहपूर्ण स्वर में मुझे सांत्वना देते हुए कहा: "रोओ मत,—तुम्हारे ऊपर ठाकुर की कृपा हुई है। बहुत कल्याण होगा। मैं कहता हूँ कि तुम्हारा कल्याण होगा। ठाकुर ही जगत गुरु हैं—वे ही तुम्हारे गुरु

हैं। मैं तो किसी को दीक्षा नहीं देता हूँ।" उनके कंठ स्वर में ऐसी ममता, स्नेह और करुणा थी एवम् उन्होंने ऐसे तन्मय भाव से बात कही कि उनको सुनकर मेरा मन शांत हुआ। मन में हुआ वे ठीक ही कह रहे हैं, उनकी बात पर मैंने विश्वास कर लिया। उन्होंने एक-दूसरे समय मुझसे कहा था। "ठाकुर ही तुम्हारे गुरु हैं, तुम पतित पावन श्रीरामकृष्ण का नाम जाप करो, इससे ही तुम्हारा कल्याण होगा। उसके बाद यदि दीक्षा की आवश्यकता होगी, तो यह व्यवस्था वे ही कर देंगे।

खोखा महाराज

महापुरुष जी उसी समय ठाकुर घर से आ कर बैठे थे। तब भी उनका तन्मय भाव था। बाल भोग का थोड़ा सा प्रसाद उनके सामने था। उसमें से उन्होंने पहले ही मुझको प्रसाद दिया था। अब उन्होंने उसमें से थोड़ा-सा सन्देश प्रसाद खा कर जल पिया। एवम् हुक्के से तंबाकू पीने लगे। उसके बाद मठ के अन्य ब्रह्मचारी एवम् संन्यासीगण उनको प्रणाम करने के लिये आये। वे भी सबसे कुशल प्रश्न करने लगे। कामकाज एवं अन्य नाना प्रकार की बातें होने लगीं। मैं एक किनारे खड़ा होकर उनका दर्शन कर रहा था और बातें सुन रहा था। कुछ क्षण बाद ही महापुरुष जी ने एक साधु से मेरे खाने-पीने एवम् रहने आदि की व्यवस्था करने का निर्देश दिया। मैंने भी महापुरुष जी को पुनः प्रणाम करके इन साधु जी के साथ नीचे लौट आया। बरामदे में आते ही एक वृद्ध साधु को दिखाकर उन साधु ने कहा, ये ठाकुर की सन्तान खोखा महाराज—"इनको प्रणाम करो," मेरा परिचय बताकर बोले : "यह बालक चण्डीपुर के यदुबाबू के आश्रम से आपलोगों के दर्शन के लिए आया है।" मेरे भक्ति भाव से पूजयनीय खोखा महाराज को प्रणाम करते ही उन्होंने हँसते हुए कहा : "ओह तुम ही चण्डीपुर आश्रम से आये हो? बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। लेकिन खूब सावधान होकर रहना। मच्छरदानी लाये हो तो? इस समय यहाँ पर बहुत मलेरिया है। हम लोग इस समय किसी को आने नहीं कहते हैं। अनेक लोग ज्वर से पीड़ित हैं। दक्षिणेश्वर का दर्शन करो, और बागबाजार में मायेर बाड़ी में श्री श्री माँ हैं, बलराम मंदिर में राजा महाराज और हरि महाराज हैं, उन सभी के दर्शन करो। यह कह कर वे ऊपर चले गये। मैं अवाक् हो कर उन वृद्ध साधु की तरफ देखते हुए सोचने लगा ये ठाकुर के एक अन्तरंग पार्षद, बेलुड़ मठ और मिशन के ट्रस्टी और गवर्निंग बाड़ी के सदस्य एवम् हजार-हजार नर-नारियों के वंदनीय और गुरु स्वामी सुबोधानंदजी महाराज हैं। इनकी साधारण वेषभूषा एवम् बातचीत देखकर मालूम ही नहीं होता कि ये इतने महान हैं। साधारण एक पुरानी चप्पल पैर में, शरीर पर एक पुरानी बनियान, घुटने के ऊपर धोती पहने हुए, एक भी दांत नहीं, उनका मुख छोटे शिशु की तरह आनंद से भरपूर है। श्रद्धापूर्ण दृष्टि से वे जिधर गये उधर मैं भक्ति और विस्मय से देखता रहा।

प्रथम दिन की और स्मृतियाँ

साधु जी ने मुझको अतिथि कक्ष में रहने के लिए कहा, अन्य आवश्यक निर्देश दिये तथा गंगा स्नान करने के लिए कह कर चले गये। बेलूर मठ का भवन ठीक गंगा जी के किनारे है। मठ के घाट की सीढ़ी गंगा नदी तक बनी है। गंगा जल से ही सब काम करते हैं। उन दिनों मठ के लिए नल का पानी नहीं था। गंगा के किनारे रहना और नित्य गंगा स्नान। दोपहर में सब के साथ बैठ कर पंगत में प्रसाद का भोजन। महापुरुष जी ने भी पंगत में खाया। खाने के बाद नीचे बरामदे में बैठ कर हुक्का पीने लगे। तब मठ के अनेक साधु उनके

पास एकत्रित हो गये। वे कुछ देर तक नाना प्रकार के धर्म प्रसंग कर के विश्राम करने के लिए ऊपर चले गये।

मठ में उस दिन और कोई भक्त उपस्थित नहीं था। मैं भी गंगा के किनारे नीचे वाले बरामदे में गंगा की तरफ मुख करके चुपचाप बैठा था। शांत परिवेश बहुत अच्छा लग रहा था। मठ भवन में सभी साधु लोग अध्ययन और विश्राम कर रहे थे। गंगा की कल-कल ध्वनि इस निस्तब्धता को और भी गंभीर बना रही थी। गंगा के किनारे बड़े-बड़े वृक्ष शोभायमान थे। उस समय तक गंगा के किनारे बांध नहीं बंधा हुआ था। गंगा के किनारे कोई मंदिर नहीं था। मठ के शेष दक्षिण भाग में गंगा के किनारे केवल स्वामी जी का गर्भ मंदिर मात्र था। उसके सामने एक दुमंजिला पक्का मकान, उसके एक तरफ दातव्य चिकित्सालय और दूसरी तरफ अतिथिशाला—गिरीश मेमोरियल। मैं धीरे-धीरे गंगा के किनारे पतले रास्ते से स्वामी जी के गर्भ मंदिर की तरफ चल पड़ा। छोटे गर्भ मंदिर की बायीं तरफ चारों तरफ से घिरा हुआ एक बेल वृक्ष के नीचे गेरुआ पगड़ी पहने हुए एक साधु गर्भ मंदिर की तरफ मुख करके गंभीर ध्यान में मग्न थे। बहुत देर तक खड़े रह कर ध्यान मग्न साधु मूर्ति का दर्शन किया। मुझे प्राचीन काल के ऋषि मुनियों के तपोवन की याद आयी। तब उस समय दुपहर के तीन बजे थे। इस ध्यान दृश्य ने मेरे तरुण मन पर गंभीर प्रभाव डाला और बेलुड़ मठ के साधुओं के प्रति मेरा मन श्रद्धा से भर गया। मैं धीरे-धीरे मठ भवन की तरफ वापस चल पड़ा। उस समय तक गायें चरने के लिए निकली थीं एवम् मठ के संन्यासी एवं ब्रह्मचारी विभिन्न काम में लगे थे। मैं मठ भवन में आकर चुपचाप गंगा के किनारे बैठ गया।

उस समय तक मठ में विद्युत् चालित पंखा एवं प्रकाश की व्यवस्था नहीं थी। संपूर्ण मठ के लिए आठ लालटेनें जलायी जाती थीं। संध्या के कुछ समय पूर्व एक ब्रह्मचारी महाराज ने विभिन्न स्थानों में लालटेन जला कर के मंदिर और मठ भवन में सर्वत्र धूप-धुना दे दिया। कुछ समय बाद ही शंख बज उठा और आरती का घंटा बजने लगा। तब तक संन्यासी और ब्रह्मचारी गंगा नदी में हाथ-मुँह धो कर ठाकुर के घर में एकत्र हुए। महापुरुष महाराज भी मृग चर्म का आसन बगल में दबा कर अपने घर से छत के ऊपर से होते हुए मन्दिर में ठाकुर को प्रणाम करके भीतर के दरवाजे के पास आसन बिछा कर बैठ गये। पूज्यनीय खोका महाराज भी साधुओं के साथ आये। निर्धारित समय पर आरती प्रारंभ हुई। सभी साधु लोग खड़े होकर, कोई करताल आदि बजा कर आरती का दर्शन करने लगे। आरती के समाप्त होने पर ठाकुर की जय बोल कर सब लोग बैठ कर पूजनीय खोका महाराज द्वारा परिचालित सम स्वर में प्रथम "खंडन भवबंधन" और उसके बाद "ओंम ह्रीं‌ऋतम्" गा कर ठाकुर को प्रणाम कर शेष किया। महापुरुष जी ने भी सबके साथ आरती स्तव गाया। उसके बाद सब लोग उठ कर मन्दिर के बरामदे और ध्यान घर आदि विभिन्न स्थानों में ध्यान जप के लिए बैठ गये। मैंने भी सबके साथ बरामदे में बैठ कर प्रार्थना आदि की। उस समय तक मन्दिर में प्रतिदिन हारमोनियम बजा कर आरती गान नहीं होता था।

रात्रि में खाने के पहले अतिथि घर में साधुओं के द्वारा भजन और गान खूब जमा था। महापुरुष जी भी इस भजन में सम्मिलित हुए थे। रात में खाने के बाद कुछ समय तक श्री श्री रामकृष्ण कथामृत का पाठ हुआ। एक साधु ने पाठ किया और सभी ने बैठ कर सुना। महापुरुष जी भी इस पाठ में आये थे। इस तरह से जितने दिन वहाँ पर था बहुत बार उनके दर्शन किये एवं उनके मुख से बहुत से उपदेश सुने, किन्तु उन सबको धारण करने की शक्ति उस समय नहीं थी।